चकमक

मार्च, 2000 बाल विज्ञान पत्रिका रु. 10.00





● कल्याणी, छह वर्ष, दिल्ली



● हितेश पटेल, छठवीं, रामनगर, काड़ीपाड़िद, गुजरात

एकलव्य का प्रकाशन

चकमक



बाल विज्ञान पत्रिका
मार्च, 2000 के 174 वें अंक में



दो बच्चे हैं - मीश्का और कोल्या। दोनों अक्सर इस जुगाड़ में लगे रहते हैं कि कुछ किया जाए, कुछ बनाया जाए। अब ये क्या बनाने की सोच रहे हैं? उसके लिए क्या-क्या करने वाले हैं? यह सब जानने के लिए पढ़ो लम्बी कहानी **'प्यारा कुनबा'** पेज 25 से। मशहूर रूसी लेखक निकोलाई नोसोव की इस कहानी का अनुवाद इस अंक से धारावाहिक के रूप में शुरू कर रहे हैं।



मशहूर भौतिकशास्त्री रिचर्ड पी. फाइनमैन के बचपन और किशोरावस्था की कुछ यादें। इसमें उन्होंने चींटियों पर अपने शौकिया अध्ययन के बारे में बताया है। **'शौकिया वैज्ञानिक और चींटियाँ'** पढ़ो पेज 8 से।

मनभावन कविताएँ

रोचक श्रृंखला

हर बार की तरह



मेरा पन्ना

तुम्हारे अपने पन्नों में तुम्हारी रचनाएँ और तुम्हारे चित्र : पृष्ठ 5 से 7, 22 से 24 और 40 पर

और भी बहुत कुछ

आवरण : चाँदनी एम. चौहाण, छठवीं, भावनगर, गुजरात

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यावसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।



इस बार की बात . . .

फरवरी में हम पुस्तक मेले में दिल्ली गए। वहाँ हम चकमक के पाठक, लेखक शिवांक से मिले। बातचीत के दौरान शिवांक ने बताया कि उसके घर में उसकी दीदी और उसका जन्मदिन एक ही दिन मनाया जाता है। एक साल शिवांक के जन्मदिन पर और अगले साल उसकी दीदी के जन्मदिन पर। और भी कई बातें हुईं। बात करके हमें यह लगा कि उनके घर में शिवांक और उसकी दीदी के साथ बराबरी का व्यवहार किया जाता है।

लड़के और लड़कियों के साथ बराबरी का व्यवहार किया जाना चाहिए, यह बात अब सभी लोग मानते हैं। लेकिन कुछ बातें आज भी सिर्फ मानी ही जाती हैं। उन्हें व्यवहार में लाने वाले लोग कम ही हैं।

तुम्हें क्या लगता है। क्या यह बात इतनी मुश्किल है कि व्यवहार में न लाई जा सके? तुम अपने भाई/बहन से यह उम्मीद तो करते ही हो कि वो तुमसे हर तरह से बराबरी का व्यवहार करे। इसके लिए तुम्हें भी उनके साथ वैसा ही बर्ताव करना होगा।



तुम्हारे यहाँ कैसा माहौल है? क्या लड़के और लड़कियों से एक जैसा बर्ताव किया जाता है? अब आगे से इन बातों पर गौर करना और फिर जो कुछ महसूस करो हमें लिखना। ध्यान देनी वाली बातें कुछ यूँ हो सकती हैं -

- जब भाई को डाँट पड़ती है तो किस तरह और जब बहन को डाँटा जाता है तो किस तरह। मसलन किन शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है।
- जब कोई लड़का रोता है तो कहा जाता है 'क्या लड़कियों की तरह रो रहे हो।' कहने को तो यह एक मुहावरा है, लेकिन यह मुहावरा बना कैसे?
- घर या बाहर के कामों में भाई-बहन और माँ-पिता, कौन कितना-कितना समय लगाते हैं और क्या-क्या करते हैं?

चकमक

मासिक बाल विज्ञान पत्रिका

वर्ष-15 अंक-9 मार्च, 2000

सम्पादन	वितरण
विनोद रायना	कमल सिंह
राजेश उत्साही	मनोज निगम
कविता सुरेश	अशोक रोकड़े
टुलटुल विश्वास	सहयोग
विज्ञान परामर्श	राकेश खत्री
सुशील जोशी	सुशील शुक्ला

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता

एकलव्य
ई-1/25
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016
(म. प्र.)
फोन : 563380

कवर का काग़ज़ : यूनीसेफ के सौजन्य से

चंदे की दरें

एक प्रति :	10.00 रुपए
छमाही :	50.00 रुपए
वार्षिक :	100.00 रुपए
दो साल :	180.00 रुपए
तीन साल :	250.00 रुपए
आजीवन :	1000.00 रुपए

सभी में डाक ख़र्च हमारा

चंदा, मनीआर्डर/ड्रॉफ्ट/चेक से एकलव्य के नाम पर भेजें। भोपाल से बाहर के चेक में बैंक चार्ज 15.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

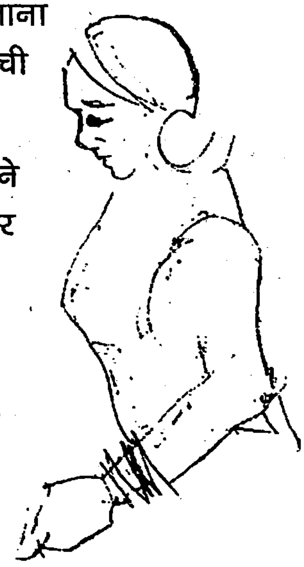
- खाना खाने के मामले में, बहन की पसंद का खाना और भाई की पसंद का खाना, कौन-सा ज़्यादा या कम बनता है।
- इसी तरह कपड़े पहनने के मामले में या घूमने जाने के बारे में।

दरअसल ये हैं तो छोटी-छोटी बातें। लेकिन इन्हीं से पता चलता है कि बराबरी का व्यवहार किया जा रहा है या नहीं। तुम में से किसी के मन में ये सवाल आ सकता है कि इन बातों पर गौर किया ही क्यों जाए। असल में इन छोटी-छोटी बातों से ही हमारी आदत (या मानसिकता) बनती है। और अगर शुरू से लड़कों की आदत बन जाए कि वो लड़कियों पर रौब जमा सकते हैं तो वो बड़े होकर भी वैसा ही व्यवहार करेंगे। इसी तरह अगर लड़कियाँ छोटी उम्र से ही लड़कों से अपने को कम समझने लगती हैं तो आगे भी हमेशा चुप रहकर गलत बातें भी सहती रहती हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, जो माता-पिता खुद भी लड़कों को लड़कियों से अलग और बेहतर मानते हैं, वे भी आमतौर पर अपने बच्चों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं।

हो सकता है तुम्हारे घर में बराबरी का व्यवहार होता हो। लेकिन क्या तुम्हारे दोस्तों के यहाँ या तुम्हारे पड़ोस में भी लड़के और लड़कियों को बराबर समझा जाता है? क्या तुम कभी इस बारे में आपस में बात करते हो?

तुम इस सम्बंध में क्या सोचते हो? अपने घर में या आसपास कहीं इस बारे में कुछ ऐसा देखते-सुनते हो जो सबको बताना चाहो तो हमें लिखना। हम चाहते हैं कि चकमक में इस विषय के बारे में पाठकों के साथ लगातार चर्चा करते रहें। इन्हीं बातों से जुड़ा एक सहेली का पत्र हमें मिला है। तुम भी पढ़ो -

> एक बार की बात है कि मेरी मम्मी और चाची की लड़ाई हुई। मेरी दीदी शाहगढ़ से आई तो बोली ममता मम्मी कहाँ गईं। मैंने दीदी से कहा, 'दीदी, चाची और मम्मी की लड़ाई से मम्मी मामा के यहाँ चली गई।' इतने में पापाजी घर आए। दीदी ने सारी बात पापा जी को बताई तो पापा को बहुत गुस्सा आया। उसी दिन पापा मामा के यहाँ चले गए। मम्मी को लेकर घर आए। फिर पापा ने मम्मी को बहुत पीटा। उस दिन से मेरी मम्मी ने मामा के यहाँ जाना बंद कर दिया। और हमारा परिवार खुशी से चल रहा है। मेरी चाची एकता के साथ रहने लगी। हम सभी खुश हैं।
>
> *(फिर अलग से लिखा था)* दीदी यदि आप हमारी परेशानी दूर करने के लिए कुछ काम कर सकती हो तो हमें सूचित करना। मैं इंतज़ार करूँगी। क्योंकि हम लोग बहुत परेशान हैं।



इस घटना के बारे में तुम क्या सोचते हो? चिट्ठी में पहले यह लिखने के बाद कि सब खुश हैं, हमारी सहेली ने यह क्यों लिखा होगा कि सब बहुत परेशान हैं? क्या जो उसके घर में हुआ वह ठीक है? तुम्हें क्या लगता है? हमें ज़रूर लिखना। हम तुम्हारे पत्रों का इंतज़ार करेंगे।

● चकमक

सभी चित्र : विप्लव शशि





आए बेर!



नभ में तारे जितने उतने,
झाड़ों पर गदराये बेर!

लाल हरे नीले नारंगी
रंग-बिरंगे छाए बेर!

कुछ मीठे, खटमिट्ठे, खट्टे
स्वाद-स्वाद के आए बेर!

बच्चे तो बच्चे हैं, बूढ़े
और बड़ों को भाए बेर!

छोटे-बड़े, धनी-निर्धन बस
जिसने चाहे, पाए बेर!

हमने-तुमने सबने मनभर
छीन-बीनकर खाए बेर!

क्यों भाई! क्या नहीं चाहिए
मीठे, पके-पकाए बेर!

● रामवचनसिंह 'आनन्द'
● चित्र : शोभा घारे



अधूरा सवाल

मैं एक बार एक दुकान पर खड़ा था। अचानक एक अजनबी ने मुझसे पूछा, ''बेटे एक बात बताओगे।'' मैंने उत्तर दिया, ''जी ज़रूर कहिए।'' अजनबी ने कहा, ''सब लोगों के सपने होते हैं। एक मंजिल होती है। तुम बड़े होकर क्या बनना चाहते हो?''

मैं कुछ सोच में पड़ गया। और मैं एक सपना देखने लगा कि बड़ा होकर मैं क्या करना चाहता हूँ। मुझे एक पल ख्याल आया कि क्या टीचर, डॉक्टर, इंजीनियर बनने के बजाय कुछ और नहीं किया जा सकता? मैं कुछ हटके बनना चाहता हूँ। मैं लेखक बनना चाहता हूँ। मुझे यह नहीं मालूम है कि मेरी कहानियाँ अच्छी हैं या नहीं।

तभी दुकानदार ज़ोर से कहता है, ''ये रहे तुम्हारे पाँच किलो चावल और बाकी के रुपए।'' मैंने दुकानदार से कहा, ''चाचा जी अभी यहाँ एक अजनबी खड़े थे। वो कहाँ गए।'' दुकानदार ने कहा, ''बेटे वह तो अपना सामान लेकर चले गए।''

और मैं भी घर की ओर चल दिया।

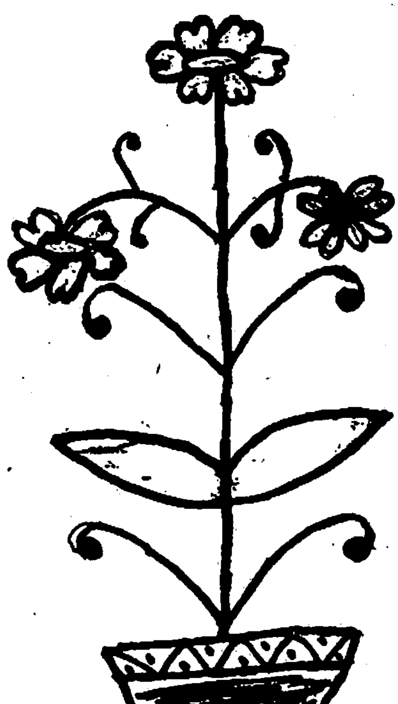
● जितेन्द्र कुमार अहिरवार, हरदा, म.प्र.

प्यारा भौंरा

भौंरा आया, भौंरा आया
फूल पर बैठकर उसने
हमको गीत सुनाया
गीत सुना के
वो इतराया

भौंरा आया, भौंरा आया
उसने फूलों का
रस चुराया
रस पीके वो
फिर इतराया
देखो भौंरा आया, भौंरा आया।

● आकाश भारद्वाज, मन्दसौर, म.प्र.



● हेलाल खाँ (भोला), तीसरी, शेरघाटी, बिहार



पहली बार

गत वर्ष की घटना है। हमारे विद्यालय में वार्षिकोत्सव की तैयारियाँ शुरू हुईं। वार्षिकोत्सव 14 नवम्बर को बाल दिवस वाले दिन मनाया जाना था। मुझे पं. जवाहरलाल नेहरू के पात्र के लिए चुन लिया गया। यह स्टेज पर चढ़ने का मेरा पहला अनुभव था। इसलिए डर भी बहुत लग रहा था। पर मन में कुछ कर दिखाने की इच्छा भी थी। रात–दिन एक करके मैंने अपना एक–एक संवाद याद किया व पोशाक की छोटी से छोटी कमी भी पूरी की ताकि मैं उस दिन सचमुच पं. नेहरू का छोटा रूप लगूँ। मन को कड़ा किया।

आखिर स्टेज पर चढ़ने का समय आ गया। मेरा मन घबरा रहा था, जुबान सूख रही थी व टाँगें काँप रहीं थीं। परमात्मा का नाम लेके मैं स्टेज पर चढ़ गया। पता नहीं कहाँ से मुझमें इतनी हिम्मत आ गई मैं इतने विशाल जनसमूह का सामना आराम से कर सका। अब मेरा स्टेज से नीचे उतरने का मन नहीं कर रहा था। पर अभिनय खत्म होने पर नीचे उतरना पड़ा। उस दिन के बाद से अब मैं यही सोचता हूँ कि कब मौका मिले व कब मैं फिर स्टेज पर चढ़ूँ।

● विशाल शर्मा, अमृतसर, पंजाब

होली

मेरे घर आए हुए थे मामा
पूरे घर में मचा दिया हमने हंगामा।
वे लाए थे ढेर सारे रंग
लेने के लिए हमने उनको कर दिया तंग।
कल था हमारा पर्व होली
पूरे गाँव में आ गई थी बच्चों की टोली।
सभी भर रहे रंग-बिरंगे गुब्बारे,
मैं भर-भर पिचकारियाँ,
उछाल रहा था रंग के फव्वारे।
एक ने मेरे ऊपर फेंक दिया रंग काला
हो गया मेरे मुँह का गड़बड़ घोटाला
उसका होने लगा अब बोलबाला।
मेरा मुँह क्रोध से हो गया लाल,
मैंने उसका बिगाड़ दिया हाल।
हमने खेली थी जमकर होली
अब हमारी खाली हो रही थी रंगों की झोली।

● आशीष अग्रवाल, छठवीं, बाली, पाली, राजस्थान

कुल्फी

कुल्फी प्यारी कुल्फी
बच्चों को यह बहुत भाती
ठण्डी-ठण्डी, मीठी-मीठी
दूध मलाई बर्फ से बनी हुई।

बड़े-बूढ़ों को भी यह बहुत भाती
ठण्डा ठण्डा इसका स्वाद
हम बच्चों को बहुत आता रास
गर्मी जब है लगती
ठण्डक इससे बहुत मिलती।

'ज्यादा कुल्फी जो खाएगा
गला खराब उसका हो जाएगा।

● राकेश गुप्ता, बालागुड़ा, मन्दसौर, म.प्र.





● राजकुमार मुजाल्दा, आठवीं, गंधवानी, धार, म.प्र.

शौकिया वैज्ञानिक और चींटियाँ

रिचर्ड पी. फाइनमैन दुनिया के एक जाने-माने भौतिकशास्त्री हैं। यूँ तो उन्हें अपने काम के लिए नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है। पर वे जाने जाते हैं भौतिकशास्त्र को बहुत ही रोचक तरीके से पढ़ाने के लिए। उनके द्वारा दिए गए लेक्चर किताबों के रूप में दुनिया भर के छात्र पढ़ते हैं। यहाँ पढ़ो उनके बचपन और किशोरावस्था की कुछ वैज्ञानिक खुरापातों के बारे में।

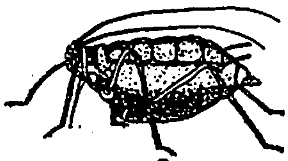
जब मैं बच्चा था तो मेरी एक ''प्रयोगशाला'' थी। प्रयोगशाला मतलब ऐसा कुछ नहीं कि मैं कोई नाप-जोख करूँ या बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग करूँ। बल्कि, मैं तो खेलता था। कभी मोटर बना लेता। कभी एक ऐसा उपकरण बनाता जिसमें से जब भी विद्युत गुज़रे तो वह बजने लगे। कभी सेलेनियम (एक तत्व) से खेलता था। कुल मिलाकर, मैं पूरे समय कुछ न कुछ उठापटक करता रहता था। मैंने वोल्टेज को नियंत्रित करने के लिए बल्ब और स्विच की सीरीज़ों का इस्तेमाल अवरोधकों की तरह किया था। इसके लिए मैंने थोड़ी-सी गणनाएँ भी की थीं। पर यह सब व्यावहारिक प्रयोग ही थे। मैंने तब तक कभी भी असली प्रयोगशाला की तरह का कोई प्रयोग नहीं किया था।



मेरे पास एक सूक्ष्मदर्शी भी था। उसमें से चीज़ों को निहारने में मुझे बहुत मज़ा आता था। पर यह धीरज का काम था। सूक्ष्मदर्शी के काँच के नीचे कुछ रखकर मैं उसे देर तक देखता ही रहता था। मैंने कई रोचक चीज़ें देखीं – जैसे डायटम (एक एककोशीय जीव) का स्लाइड के एक छोर से दूसरे छोर तक जाना। और ऐसा ही बहुत कुछ।

मेरे पास एक छोटा जेबी सूक्ष्मदर्शी भी हुआ करता था। वह असल में एक खिलौना सूक्ष्मदर्शी ही था। इसका लैंसों वाला हिस्सा निकालकर मैं बिल्लौरी काँच की तरह हाथ में पकड़ लेता था। यह सूक्ष्मदर्शी 40 से 50

गुना तक बड़ा करके दिखाता था। अगर थोड़े धीरज से काम लें तो उसे अच्छी तरह से फोकस भी किया जा सकता था। यह एक ऐसा सूक्ष्मदर्शी था जिसे लेकर मैं कहीं भी घूम सकता था। सड़क पर भी। और चीजों को गौर से निहार सकता था।



एक एफिड

उन दिनों मैं प्रिंसटन में कॉलेज की शुरुआती पढ़ाई कर रहा था। एक दिन दीवार पर चढ़ रही एक बेल के इर्द-गिर्द रेंग रही कुछ चींटियों को मैंने देखा। देखने के लिए मैंने वह सूक्ष्मदर्शी निकाला। चींटियों का नजारा देखकर मैं इतना उत्तेजित हो गया कि चिल्ला उठा। मैंने चींटी के साथ एक एफिड देखा था। एफिड एक तरह के बारीक कीट होते हैं जिन्हें चींटियाँ पालती हैं। वे उनकी देखभाल करती हैं। जिस पौधे पर एफिड रहते हैं, अगर वह पौधा मरने लगे तो चींटियाँ एफिड को दूसरे पौधे पर ले जाती हैं। बदले में चींटियों को एफिड का आधा पचाया हुआ रस मिलता है, जिसे 'मधुरस' कहते हैं। यह सब मैं जानता था। मेरे पिताजी ने मुझे यह सब बताया था। लेकिन मैंने यह सब कभी आँखों से देखा नहीं था।



एफिड और चींटी



थप थप थप

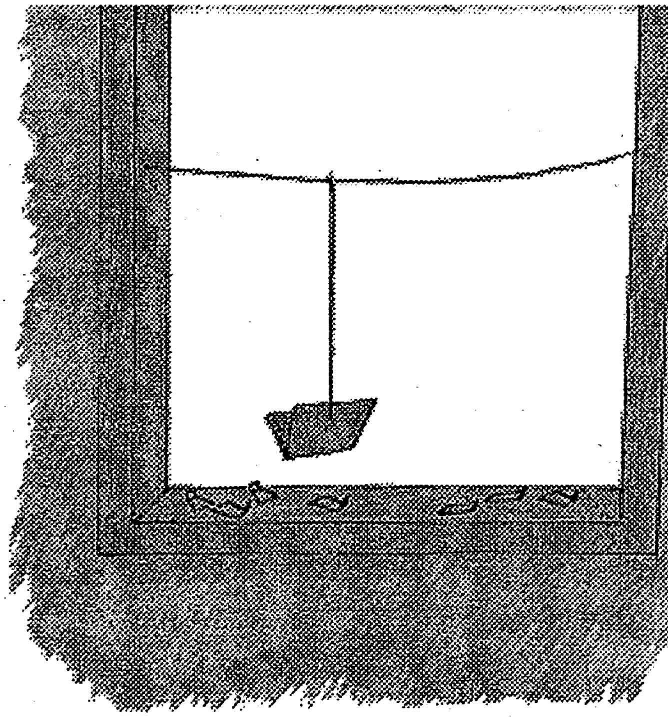
तो यहाँ एक जनाब एफिड थे। और कुछ देर में एक चींटी भी वहाँ आ धमकी। चींटी ने एफिड को अपने पैरों से थपथपाया – चारों ओर से – थप, थप, थप, थप। यह तो बहुत ही मजेदार था। फिर एफिड के पीछे से रस निकल आया। सूक्ष्मदर्शी में से सब कुछ बड़ा-बड़ा दिख रहा था। रस की बूँद भी काफी बड़ी, खूबसूरत चमकती हुई गेंद की तरह – बल्कि उस तरल रस के पृष्ठ तनाव के कारण एक गुब्बारे की तरह दिख रही थी। सूक्ष्मदर्शी बहुत अच्छा नहीं था। उसमें से रोशनी गुज़रने पर वह कुछ रंगों में बँट जाती थी। इससे वह बूँद हल्की-सी रंगीन दिखाई दे रही थी। बहुत ही जबरदस्त नजारा था।



और टप!

चींटी ने रस की बूँद को अपने अगले दो पैरों से थामा, एफिड पर से उठाया और पकड़ लिया। उस सूक्ष्म स्तर पर दुनिया इतनी अलग होती है कि आप पानी को भी उठाकर पकड़ सकते हैं। शायद चींटियों की टाँगों पर कुछ तैलीय पदार्थ होता होगा। इसीलिए बूँद को छूने या पकड़ने पर भी पृष्ठ तनाव से बनी उसकी बाहरी झिल्ली टूटी नहीं। फिर उस चींटी ने अपने मुँह से बूँद की बाहरी सतह की झिल्ली को तोड़ा। बस, पृष्ठ तनाव के कारण वह

बूँद टूटकर सीधे ही उसके मुँह से होते हुए पेट में घुस गई। इस पूरी घटना को घटते हुए 'देखना' बहुत मज़ेदार था।



प्रिंसटन में एक दिन मेरे कमरे की खिड़की की सिल पर कुछ चींटियाँ निकल आईं और इधर-उधर मण्डराने लगीं। मेरे मन में जिज्ञासा उठी कि इन्हें चीज़ों के बारे में पता कैसे चलता है? कैसे पता चलता है कि कहाँ जाना है? क्या ये एक दूसरे को बता सकती हैं कि खाना कहाँ है? जैसे मधुमक्खियाँ बताने में सक्षम होती हैं। क्या इन्हें ज्यामिति का कोई आभास है?

यह सब बहुत ही बचकाना लगेगा, क्योंकि आज सबको इन सवालों के जवाब पता हैं। पर उस समय मुझे जवाब मालूम नहीं थे। पता करने के लिए मैंने एक प्रयोग किया। सबसे पहले मैंने खिड़की के आर-पार एक धागा बाँधा। उससे एक और लम्बे धागे के ज़रिए एक गत्ते को बीच से मोड़कर टाँग दिया। गत्ता खिड़की की सिल से थोड़ा ऊपर चींटियों वाली जगह से कुछ दूर लटका था। उस पर मैंने थोड़ी शक्कर बिखेर दी। इस सब का उद्देश्य यह था कि शक्कर ऐसी जगह पर हो जो चींटियों से अलग-थलग हो। चींटियाँ इत्तेफाक से भी शक्कर तक न पहुँच पाएँ। मैं चाहता था कि इस प्रयोग में सब कुछ नियंत्रित हो।

इसके बाद मैंने कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़े किए और सब को बीच से मोड़कर उनकी गाड़ी बनाई। इनमें मैं चींटियों को उठाकर एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकता था। मैंने ये गाड़ियाँ दो जगहों पर रखीं – कुछ को मैंने खिड़की से लटक रहे शक्कर वाले गत्ते के नीचे सिल पर रखा। और बाकी को चींटियों के पास। फिर सारी दोपहर मैं एक किताब पढ़ते हुए चींटियों पर ध्यान लगाए बैठा रहा। तब तक जब तक कि एक चींटी कागज़ की 'गाड़ी' पर न चढ़ी। जैसे ही एक चींटी ने एक गाड़ी पर पैर रखा, मैंने उसे गाड़ी समेत उठा लिया और शक्कर वाले लटके हुए गत्ते पर छोड़ दिया। ऐसा मैं हर उस चींटी के साथ करता रहा जो किसी गाड़ी पर चढ़ जाती थी। इस तरह जब कुछ चींटियाँ शक्कर तक पहुँच गईं तो उनमें से एक गलती से वहाँ, नीचे रखे कागज़ की गाड़ी पर गिर गई। तब उसे मैं वापस पहले वाली जगह तक ले आया।

मैं यह देखना चाहता था कि बची हुई चींटियों को यह संदेश पाने में कितनी देर लगती है कि 'गाड़ी वाली जगह पर जाना चाहिए। इससे शक्कर तक पहुँचा जा सकता है!' पहले तो वहाँ इक्का-दुक्का चींटियाँ आईं, पर फिर जल्दी ही चींटियों की रफ्तार बढ़ती गई। अन्त में तो मैं चींटियों को इधर से उधर और उधर से इधर पहुँचाते-पहुँचाते पगलाने लगा। फिर ऐसे में, जब सब कुछ बढ़िया चल रहा था, मैं चींटियों को शक्कर से उठाकर एक तीसरी नई जगह पहुँचाने लगा। अब सवाल यह था कि क्या चींटियाँ सिर्फ वहीं तक जाना सीखती हैं जहाँ से वे हाल ही में लौटीं या वे वहाँ भी जा सकती हैं जहाँ वे इससे पहले गईं थीं?

कुछ देर बाद सबसे पहले 'गाड़ी' वाली जगह पर लगभग कोई भी चींटी नहीं जा रही थी। जबकि बाद वाली जगह पर चींटियों की भीड़ लगी हुई थी – शक्कर ढूँढते हुए घूम रही थीं सब। तो मुझे इतना तो पता चल गया कि चींटियाँ बस वहीं तक जा पाती हैं जहाँ से वे हाल में ही आई हों।

मैंने एक और प्रयोग किया। मैंने खिड़की पर कुछ शक्कर बिखेरकर उसके आसपास सूक्ष्मदर्शी की काँच की स्लाइडें फैला दीं थीं। इससे शक्कर तक पहुँचने के लिए चींटियों को इन स्लाइडों पर से चलकर जाना होता था। फिर, एक पुरानी स्लाइड की जगह नई लगाकर, या स्लाइडों की जगह आपस में बदलकर, मैं यह साबित कर सकता था कि चींटियों में ज्यामिति की कोई समझ नहीं होती है। वे यह पता नहीं लगा पाती हैं कि कोई चीज कहाँ स्थित है। अगर वे एक रास्ते से शक्कर तक जाती हैं और वापस किसी छोटे रास्ते से आती हैं तो उन्हें पता भी नहीं चलता कि लौटने का रास्ता छोटा था।

स्लाइडों के एक प्रयोग से यह भी स्पष्ट हो गया था कि चींटियाँ जहाँ से चलकर जाती हैं वहाँ एक किस्म का चिन्ह या गन्ध या निशान भी छोड़ती जाती हैं। मैंने कुछ आसान प्रयोग यह पता लगाने के लिए किए कि क्या चींटियों के ये मार्ग-चिन्ह दिशा के हिसाब से होते हैं। अगर मैं सीधे चली जा रही एक चींटी को कागज पर उठाकर गोल-गोल घुमाकर उसके रास्ते पर उलटी दिशा में छोड़ देता, तो वह उसी दिशा में चल पड़ती। उसे पता भी नहीं चलता था कि वह उलटी तरफ चल रही है। वह तब तक ऐसे ही चलती रहती जब तक उसे कोई दूसरी चींटी नहीं मिले।

चींटियों के साथ प्रयोग करने में एक दिक्कत यह आती थी कि उन पर अगर आप साँस छोड़ते रहें तो वे इधर-उधर भागने लगती हैं। यह शायद ऐसे किसी जानवर के प्रति उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी जो उन्हें खाता हो या डिस्टर्ब करता हो। मुझे यह तो नहीं पता चला कि मेरी साँसों की गर्माहट, नमी या गंध – किससे उन्हें तकलीफ होती थी। पर प्रयोग करते हुए, चींटियों को कागज की गाड़ी पर उठाकर एक जगह से दूसरी जगह लाते-ले जाते हुए, मुझे हमेशा दम साधकर, सिर एक तरफ घुमाकर काम करना पड़ता था! ताकि प्रयोग ठीक तरह से हो पाए।

एक सवाल मेरे मन में अक्सर कुलबुलाता था। मैं सोचता था कि चींटियों के चलने की लाइनें इतनी सीधी और सुन्दर-सी व्यवस्थित क्यों दिखती हैं? उनकी चाल से ऐसा क्यों लगता है कि जैसे उन्हें पता हो कि वे क्या कर रही हैं। कहाँ जा रही हैं। जैसे कि उनमें ज्यामिति की बड़ी अच्छी समझ हो। जबकि उनकी ज्यामिति की समझ को परखने के लिए जितने भी प्रयोग मैंने किए, उनमें से किसी ने भी काम नहीं किया।

कई साल बाद, मैं जब कैलटेक में रहता था, एक दिन मेरे गुसलखाने के पास कुछ चींटियाँ घूमती दिखाई दीं। मैंने सोचा, "यह बड़ा अच्छा मौका है।" मैंने उस जगह से कुछ दूर थोड़ी शक्कर बिखेर दी। फिर मैं सारी दोपहर इस बात का इंतज़ार करता बैठा रहा कि किसी चींटी को शक्कर का सुराग मिल जाए। ऐसे में मामला सिर्फ धीरज का होता है।

जैसे ही पहली चींटी शक्कर तक पहुँची, मैंने एक रंगीन पेंसिल उठाई और चींटी जैसे-जैसे चलती गई, उसके पीछे-पीछे मैं लकीर खींचता गया। इससे मुझे पता चल सकता था कि इस चींटी का मार्ग-चिन्ह कहाँ है। मैंने पहले ही कुछ प्रयोग करके यह पता लगा लिया था कि पेंसिल के निशान से चींटियों को कुछ फर्क नहीं पड़ता। वे धड़ल्ले से उसके ऊपर से रेंग जाती हैं। इसलिए मुझे पता था कि मैं उन्हें डिस्टर्ब नहीं कर रहा था। वह चींटी शक्कर वाली जगह से वापस अपने बिल तक आने में थोड़ा इधर-उधर भटक गई थी। इसलिए मेरी बनाई हुई लकीर लाइन से चल रही चींटियों के मार्ग की तरह सीधी और व्यवस्थित नहीं थी। वह काफी घुमावदार व पेंचदार थी।

फिर शक्कर तक पहुँचने वाली दूसरी चींटी वापस लौटने लगी तो मैंने उसके रास्ते का पीछा एक-दूसरे रंग की पेंसिल से किया। इस चींटी ने अपने शक्कर तक पहुँचने के रास्ते पर न चलकर पहली चींटी के लौटने के रास्ते को अपनाया। मैंने इसके आधार पर यह सोचा कि शायद जब किसी चींटी को भोजन मिल जाता है तो उसके बाद वह बहुत तेज़ मार्ग-चिन्ह छोड़ती चलती है। लेकिन जब वह ऐसे ही भोजन की तलाश में मण्डराती फिरती है तो मार्ग-चिन्ह तुलनात्मक रूप से कमज़ोर होता है।

खैर, यह दूसरी चींटी काफी जल्दी में थी। वह लगभग हूबहू पहली चींटी के लौटने के रास्ते पर ही चली। लेकिन जल्दी-जल्दी में वह कई बार पहली लाइन के कई पेंचों पर से सीधी निकल जाती। ऐसा करते हुए उससे पल भर के लिए मार्ग-चिन्ह छूट जाता, पर अगले ही पल वह उसे फिर पा लेती और उसके मुताबिक चलती जाती। इतने से ही यह स्पष्ट हो गया था कि दूसरी चींटी का रास्ता पहली की तुलना में काफी सीधा था। इसके बाद हर अगली चींटी के साथ रास्ते की लकीर में लगातार इस तरह की "बेहतरी" होती गई। हर बार अगली चींटी कुछ जल्दी में और कुछ लापरवाही से उससे पहले वाली के रास्ते पर चलती थी। इससे उसके रास्ते पर बनी लकीर कुछ और सीधी हो जाती थी।

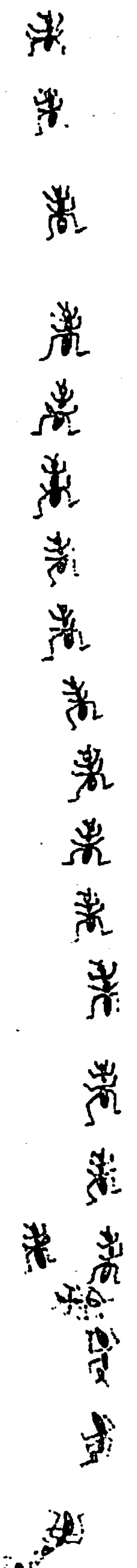
मैंने आठ या दस चींटियों का रंगीन पेंसिलों से पीछा किया। अन्त में मेरी रंगीन लाइन काफी सीधी हो गई। यह कुछ-कुछ चित्रकारी करने जैसा था। पहले आप एक फालतू-

सी काँपती हुई लाइन बनाते हैं, फिर आप दो-चार बार उसी को दोहराते हैं। कुछ देर बाद एक सुन्दर व्यवस्थित लाइन बन जाती है।

मुझे याद है कि जब मैं छोटा था तो पिता जी बताते थे कि चींटियाँ कैसी गजब की होती हैं। कैसे वह एक-दूसरे का सहयोग करती हैं। मैं अक्सर तीन-चार चींटियों को मिलकर टॉफी का टुकड़ा अपने घर तक ले जाते हुए देखता था। सरसरी निगाह से देखो तो यह आपसी तालमेल लगता है। लेकिन अगर ध्यान से देखो, तो पता चलता है कि ऐसा कुछ भी नहीं है। उन सबका व्यवहार ऐसा होता है जैसे कि उस टॉफी को किसी और ने पकड़ रखा है। कोई उसे एक तरफ खींचता है तो दूसरा दूसरी तरफ। जब बाकी चींटियाँ उस टुकड़े को खींच रही हों तो यह भी हो सकता है कि उनमें से एक उसके ऊपर ही चढ़ बैठे। मिठाई या टॉफी का टुकड़ा ठोकरें खाता लड़खड़ाता हुआ घिसटता जाता है। उसके आगे बढ़ने की कोई स्पष्ट दिशा भी नहीं रहती।

जब मैं प्रिंसटन में रहता था तो एक दिन चींटियों ने वह अलमारी ढूँढ ली जिसमें मैं डबलरोटी, जैम (मुरब्बा) जैसी खाने की चीजें रखता था। यह अलमारी खिड़की से काफी दूर थी। उस कमरे के फर्श पर चींटियों की एक लम्बी कतार चली जा रही थी। उन्हीं दिनों मैं चींटियों पर कई प्रयोग कर रहा था। मैंने अपने आप से पूछा, "बिना इनको मारे मैं इन चींटियों को अलमारी तक जाने से कैसे रोक सकता हूँ? बिना किसी ज़हर या दवा के। मुझे इन चींटियों के प्रति इंसानियत से पेश आना चाहिए।"

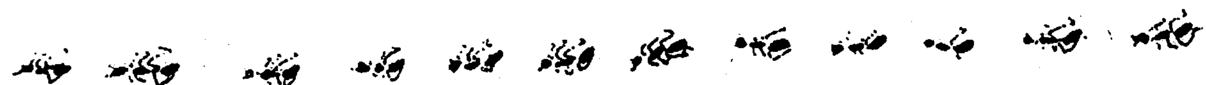
तो जो कुछ मैंने किया वह कुछ यूँ था : पहले मैंने उस छेद को ढूँढा जिसमें से निकलकर चींटियाँ कमरे में घुस रहीं थीं। उस जगह से 6–8 इंच दूर मैंने कुछ शक्कर रख दी। यह काम ऐसे किया कि चींटियों को इसके बारे में खबर नहीं लगी। फिर मैंने कागज़ मोड़कर चींटियों के लिए गाड़ियाँ बनाईं और ये गाड़ियाँ चींटियों के आने-जाने के रास्ते के पास-पास रख दीं। जैसे ही अलमारी से खाना लेकर लौट रही कोई चींटी गाड़ी पर चढ़ती, मैं तुरन्त उसे उठाकर शक्कर तक पहुँचा देता। इसी तरह अलमारी की ओर जाने वाली कोई चींटी भी कागज़ की गाड़ी पर चढ़ जाती तो मैं उसे भी शक्कर तक पहुँचा देता। ऐसा करते-करते इन चींटियों ने शक्कर से अपने घर के छेद तक का रास्ता ढूँढ लिया। फिर तो इस नए रास्ते पर काफी तेज़ मार्ग-चिन्ह बनने लगे। धीरे-धीरे पुराने अलमारी वाले रास्ते पर चींटियों की आवाजाही काफी कम हो गई। मैं निश्चिंत हो गया। मुझे पता था कि अगले आधे घण्टे में पुराने रास्ते के मार्ग-चिन्ह सूख जाने वाले थे। अगले एक घण्टे में चींटियाँ मेरी अलमारी से जा चुकी थीं। और मुझे फर्श भी नहीं धोना पड़ा, न ही एक भी चींटी को मारना पड़ा। बस मैं चींटियों को इधर से उधर गाड़ियों में घुमाता रहा!



● रिचर्ड पी. फाइनमैन की आत्मकथा के पहले भाग 'श्योरली यू आर जोकिंग मिस्टर फाइनमैन' के एक अध्याय 'अमेचर साइंटिस्ट' के सम्पादित अंश

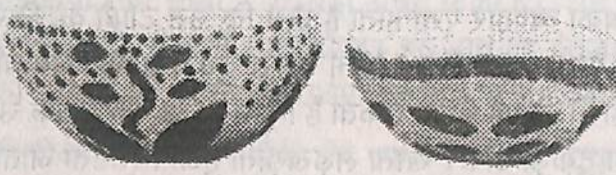
● अनुवाद : टुलटुल विश्वास

● चित्र : विप्लव शशि एवं टाइम लाइफ सीरीज़ की 'इन्सेक्ट्स' से साभार





तूम्बी से मन चाही चीज़ें



तूम्बा या तूम्बी! हाँ वही पकी हुई सूखी गोल लौकी का बना हुआ। ये तो तुम जानते ही होगे कि कैसे तैयार करते हैं इसे। पकी हुई गोल लौकी जब पूरी तरह सूख जाती है तो उसमें डंठल वाली ओर से एक छोटा छेद कर अन्दर का सूखा गूदा निकाल लेते हैं। बस तैयार हो गया तूम्बा!

अब चाहो तो इसमें पानी भरो, चाहो तो कई और मज़ेदार चीज़ें बनाओ।

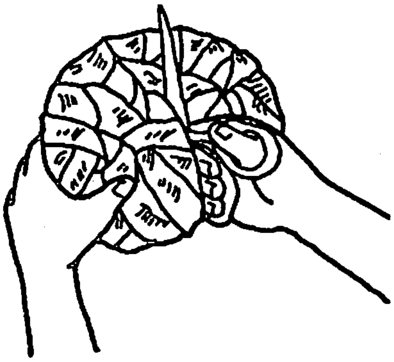
इस तूम्बी का चलन सिर्फ हमारे देश में ही नहीं बल्कि यहाँ से कई हज़ार किलोमीटर दूर वेस्ट इंडीज़ के एक छोटे से द्वीप 'प्यूर्टो रिको' में भी होता है। वहाँ लोग इसी तूम्बे से सुन्दर सुन्दर कटोरे बनाते हैं। पहले इस तूम्बे को बीच से काटते हैं और फिर इसके ऊपर करते हैं चित्रकारी! फिर इन कटोरों का उपयोग खाना खाने और परोसने में करते हैं। वहाँ बच्चों के लिए बिल्कुल छोटे-छोटे, मुर्गी के अण्डे के आकार के नचाने वाले लट्टू बनाते हैं तूम्बों से।

हम जानते हैं इतने आकर्षक कटोरों के लिए तुम भी तूम्बी जुगाड़ ही लोगे। फिर भी अगर तूम्बी न मिले तो? तो भी तुम इतने ही सुन्दर कटोरे बना सकते हो।

इसके लिए तुम्हें चाहिए – एक फुग्गा (गुब्बारा), अखबार के कुछ टुकड़े, लेई या गोंद और काटने के लिए कैंची या ब्लेड। रंग करने के लिए तो तुम कुछ न कुछ जुगाड़ ही लोगे।



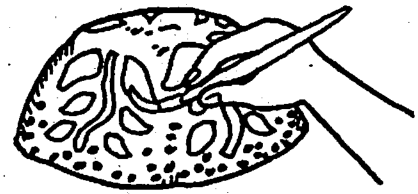
1. पहले फुग्गे को तूम्बानुमा फुला लो। अब इस तूम्बे पर अखबार की पट्टियाँ फाड़कर गोंद या लेई से चिपका लो।



2. कागज़ की पट्टियों की कम से कम 4–5 परतें ज़रूर चिपकाना ताकि तुम्हारा कटोरा थोड़ा मजबूत बने। अब इसे सूखने रख दो।

3. जब सूख जाए तो इसे बीच से दो भागों में काट लो।

4. बस अब इसे आकर्षक बनाने के लिए स्केच पेन या दूसरे किसी भी रंग से अपनी मनपसंद चित्रकारी करो इस पर।



खेल



दुनिया भर के

इस बार

खो-खो



गाँव से पचास-साठ गज की दूरी पर ही लड़कियों का स्कूल था। स्कूल के सामने एक बड़ा -सा हरा-भरा घास का मैदान था। शाम के चार बज रहे होंगे। लड़कियाँ मैदान में इकट्ठी होनी लगी थीं। लगता था छुट्टी के बाद कोई खेल खेलने वाली हैं।

जब तक हम मैदान में पहुँचते, खेल शुरू हो चुका था। लकड़ी से ज़मीन खरोंचकर एक आयताकार मैदान बनाया गया था।

मैदान के बीचों-बीच एक लाइन में आठ लड़कियाँ उकडू बैठी थीं। एक का मुँह एक दिशा में था तो अगले का मुँह पहले वाली की पीठ की दिशा में। यानी पहली, तीसरी, पाँचवीं और सातवीं का मुँह एक तरफ तो दूसरी, चौथी, छठवीं और आठवीं का मुँह दूसरी तरफ।

दो लड़कियाँ इन लाइन में बैठी लड़कियों के दोनों तरफ खड़ी थीं। इनमें से एक विरोधी टीम की खिलाड़ी थी। विरोधी टीम की बाकी आठ खिलाड़ी मैदान के पास ही बैठी थीं। मैदान के बाहर बैठी टीम की यह खिलाड़ी, मैदान के अन्दर बैठी टीम की खिलाड़ियों को दौड़कर छका रही थी। बैठी टीम की एक खिलाड़ी जब छक रही टीम के खिलाड़ी को छूने की कोशिश में थक जाती तो वह अपनी टीम के किसी और खिलाड़ी की पीठ पर छूकर 'खो' बोलती। उसके खो बोलते ही बैठी खिलाड़ी, छका रही खिलाड़ी को छूने दौड़ जाती और खो देनेवाली खिलाड़ी, उसकी जगह बैठ जाती।

हाँ, एक विशेष बात यह नज़र आ रही थी कि छकाने वाली खिलाड़ी मैदान के अन्दर, छकाते हुए कहीं भी दौड़ सकती थी। वह कभी तो पीछे मुड़कर दौड़ने लगती तो कभी बैठे हुए खिलाड़ियों के बीच से निकल जाती। परन्तु छूने वाली खिलाड़ी न तो खिलाड़ियों के बीच से गुज़र सकती थी, न ही एक दिशा में भागते हुए मुड़कर दूसरी दिशा में भाग सकती थी। यदि उसे खिलाड़ियों के दूसरी तरफ जाना होता तो खम्भे को पार करना होता था। कितना रोमांचक है यह खेल। हाँ, इसे ही खो-खो कहते हैं।

भले ही खो-खो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध नहीं है मगर हमारे देश में तो गाँव-गाँव में यह खेला जाता है। ज़िला व प्रदेश स्तर पर इसकी प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। इतना मज़ेदार और रोमांच से भरपूर होने के कारण ही एशियाड जैसी बड़ी प्रतियोगिताओं में भी इसे शामिल करने को लेकर बातचीत चल रही है। यदि ऐसा हुआ तो कुछ ही सालों में तुम इसके मैच, क्रिकेट की तरह अपने टेलीविज़न पर देख सकोगे।

स्कूल के मैदान पर खेला जा रहा यह मैच कुछ देर के लिए रुक गया था। पूछने पर पता चला कि एक पारी के बाद पाँच मिनिट का विश्राम चल रहा है। जी हाँ! खो-खो का एक मैच दो पारियों में पूरा होता है। एक पारी में एक टीम सात मिनिट छकाती है। यानी दूसरी टीम मैदान में अन्दर बैठती है। फिर दो मिनिट का आराम दिया जाता है। फिर

सात मिनिट दूसरी टीम छकाती है और पहले छका रही टीम मैदान के अन्दर बैठती है। इस तरह दोनों टीमों के खेल लेने के बाद, दूसरी पारी शुरू होने के पहले पाँच मिनिट का विश्राम होता है।

स्कूल के मैदान पर खेले जा रहे इस खो-खो मैच में पहली पारी में मैदान के अन्दर बैठी टीम के खिलाड़ियों ने छकानेवाली टीम के सात खिलाड़ियों को छूकर मार दिया था। यानी अपने लिए सात अंक बना लिए थे। दूसरी टीम के सिर्फ चार अंक हुए, पहली पारी की समाप्ति पर।

मैदान के अन्दर खिलाड़ियों के अलावा चार और लड़कियाँ और एक शिक्षक खड़े थे। उन लड़कियों में से दो अंपायर थीं, जिनकी देखरेख में मैच खेला जा रहा था। बाकी दो में से एक स्कोरर थी जो टीमों के अंकों का लेखा-जोखा रख रही थी तथा दूसरी एक स्टॉप वॉच (बारीकी से समय नापने की घड़ी) से समय का ध्यान रखती थी। उसके पास एक बड़ी-सी सीटी भी थी, जिसको बजाकर वह खेल शुरू या खत्म करवाती होगी। और रेफरी बने थे उस स्कूल के खेल टीचर! वे अंपायरों के व्यवहार पर नज़र रखते थे और मैच के दौरान होने वाले किसी भी विवाद या झगड़े को सुलझाते थे।

मैच की दूसरी पारी शुरू होने से पहले मैदान की सभी लाइनों को फिर से खरोंचा गया। अब मैदान की सभी लाइनें फिर साफ-साफ नज़र आने लगीं थीं। मैदान नियमों के हिसाब से ही बनाया गया था, बिल्कुल उसी नापतौल का। यानी लगभग 27 मीटर लम्बा और 15 मीटर चौड़ा। मैदान को लम्बाई में ग्यारह रेखाओं से बाँटा गया था।

सबसे पहले लम्बाई में दोनों तरफ बाऊण्ड्री रेखा से 2.7–2.7 मीटर अन्दर दो रेखाएँ थीं। इन्हें पोस्ट रेखा कहते हैं। इन दोनों पोस्ट रेखाओं के बीच में एक खम्भा गड़ा था। इन खम्भों की ऊँचाई लगभग 1.2 मीटर और मोटाई/गोलाई 30 से 40 सेंटीमीटर होगी। इन दोनों खम्भों को एक 30 सेंटीमीटर चौड़ी रेखा जोड़ रही थी जिसे मध्यपट्टी कहते हैं। पोस्ट रेखा से अन्दर की तरफ दोनों ओर सवा दो मीटर मैदान को छोड़कर बाकी बचे बीच के मैदान को 30 सेंटीमीटर चौड़ी आठ लाइनों में बाँटा गया था। यानी इन आठ रेखाओं में से हर दो रेखाओं के बीच की दूरी 2.1 मीटर थी। ये थीं 8 क्रॉस पट्टियाँ। इन क्रॉस पट्टियों और मध्यपट्टी के कटान पर 30×30 सेंटीमीटर का एक वर्ग बनता है। इन आठ वर्गों पर ही बैठते हैं आठ खिलाड़ी। तो



ये तो रहा बिल्कुल सही नापतौल वाला मैदान।

तुम जब खो-खो खेलते होगे तो शायद मैदान की लम्बाई, चौड़ाई अंदाज़ से ही तय करते होगे। खिलाड़ियों की संख्या भी इस पर निर्भर करती होगी कि तुम्हारे कितने दोस्त मौजूद हैं।

प्रतियोगिताओं में कौन से टीम पहले छकाएगी अथवा पहले अंक जुटाएगी उसके लिए टॉस होता है। जो टीम टॉस जीतती है वह दोनों में से कुछ भी चुन सकती है।

हाँ एक बात और, प्रतियोगिताओं में एक नियम यह भी होता है कि छकाने वाली टीम अपने नौ खिलाड़ियों को तीन-तीन के तीन बैच में बाँटती है। और छकाने के लिए एक साथ तीन खिलाड़ी यानी एक बैच, मैदान में उतरता है। जब पूरे तीन खिलाड़ी मर जाते हैं तो उसके बाद दूसरा बैच उतरता है।

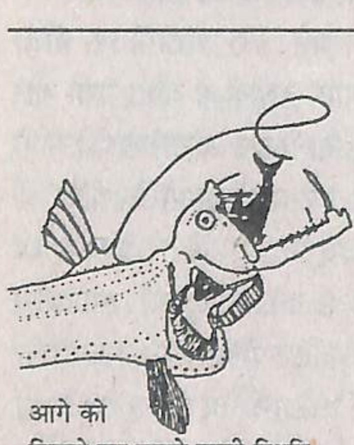
स्कूल में खेले जा रहे मैच में विश्राम का समय खत्म हो गया था। दोनों टीमें दूसरी पारी का खेल खेलने के लिए मैदान में पहुँच चुकी थीं। पहले सात मिनिट के खेल में छकाने वाली टीम के खिलाड़ियों ने ज़ोरदार खेल का प्रदर्शन किया। सात मिनिट में विरोधी टीम उसके सिर्फ दो खिलाड़ियों को ही छू पाई। यानी उसने अपने लिए दो अंक जुटाए। दो मिनिट के विश्राम के बाद दूसरी टीम ने लगभग पाँच मिनिट में ही विरोधी टीम के छह खिलाड़ियों को छूकर मैच जीत लिया।

कभी-कभी ऐसा भी होता है जब दोनों टीमों के अंकों के बीच 12 या ज़्यादा का अन्तर हो। जैसे पहली टीम के यदि 2 अंक हैं और दूसरी के 15 हैं तब पहली टीम दूसरी टीम को दूसरी पारी में पहले खेलने के लिए कह सकती है। इसे फॉलोऑन कहते हैं। ऐसे में यदि फॉलोऑन खेलने वाली टीम पहली टीम से ज़्यादा अंक स्कोर करती है तभी पहली टीम दूसरी पारी में खेलती है।

हो सकता है खो-खो खेलते हुए तुम्हारे सामने कोई पेचीदा स्थिति आ जाए। या खो-खो से सम्बंधित कुछ और बातें तुम जानना चाहते हो। या तुम किसी अलग तरीके से खेलते हो खो-खो। तो ऐसी सब बातें हमें लिखना। ● ● ●

प्रस्तुति : सुशील शुक्ला

खुल जा सिम सिम . . .

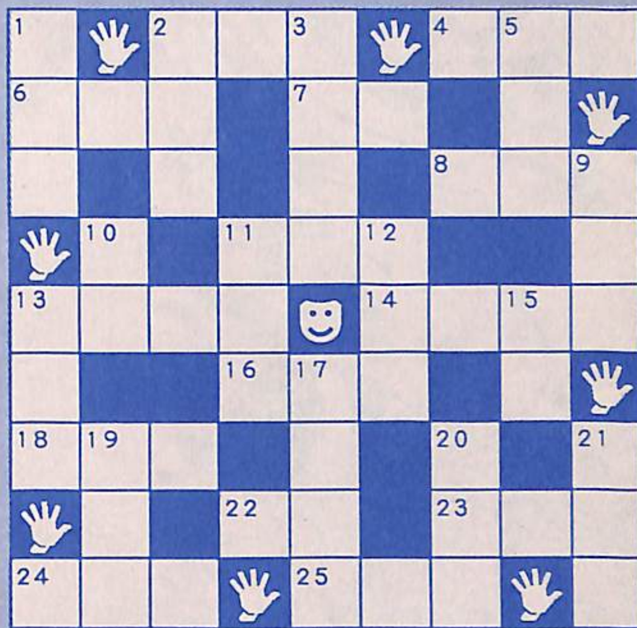


आगे को निकले हुए जबड़े वाली स्थिति



खाना खाना सबके लिए इतनी आसान बात नहीं होती कि चबाओ, निगलो और हज़म कर डालो। गहरे समुद्र में पाई जाने वाली इस वाइपर मछली को ही देखो। यह मछली अक्सर अपने जबड़े के माप से बड़ी मछलियों को खा जाती है। इसे सम्भव बनाने के लिए उसके जबड़े की मज़ेदार बनावट को चित्र में देखो। इस मछली की रीढ़ की हड्डी, उससे जुड़ी माँसपेशियाँ, दिल और जबड़े इस तरह से बने हैं कि जब भी वह किसी बड़ी मछली को निगलती है तो उसका निचला जबड़ा गर्दन से खुलकर आगे को निकल आता है। इसके साथ ही दिल और गलफड़े जैसे नाज़ुक और ज़रूरी अंग भी बाहर की ओर खिसक जाते हैं ताकि खाई जाने वाली मछली के रगड़ से उनको कोई नुकसान न पहुँचे। खाना खाने का कितना पेचीदा तरीका है, है न!

वर्ग पहेली - 104



संकेत : बाएँ से दाएँ

2. आज तक लीना कातती है सूत (3)
4. सफलता में है खेत में लगा अनाज (3)
6. प्याज नमक मिलाकर पैदा होना (3)
7. चिट्ठी-पत्री या पत्ती (2)
8. सूखा हुआ नारियल (3)
11. बीता हुआ (3)
13. रसगुल्ले जैसी लम्बी मिठाई (4)
14. वाहन चलाने वाला (4)
16. दामन पलटने में ऊनी कंबल है (3)
18. कबीर सोई पीर है में खाना पकाने का कमरा (3)
22. एकमुश्त, खूब बड़ी मात्रा (2)
23. सम्मान या ख्याल करना (3)
24. इन्सानी (3)
25. दाँत (3)

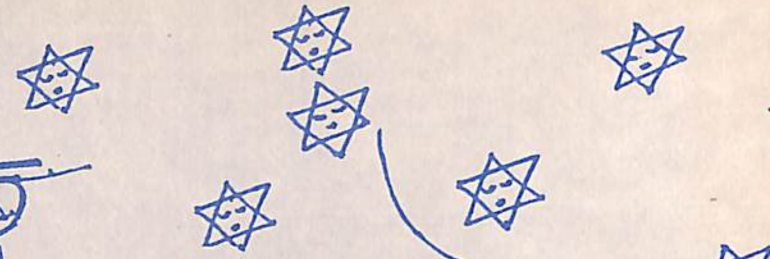
संकेत : ऊपर से नीचे

1. जो दिखती नहीं, देखती है और अंधविश्वास में लग जाती है (3)
2. इच्छा या कामना (3)
3. पोली पाती के उठापटक में है कोई बात छुपाने की कोशिश (4)
5. बहुत पास (3)
9. एक जाने माने भारतीय भौतिकशास्त्री (3)
10. दोपहर के बाद का समय (2)
11. सुख-शांति (3)
12. बार बार याद दिलाना या अनुरोध करना (3)
13. तुम रचना करो में है चालाक (3)
15. वचन या करार (2)
17. कम धुर नहीं है भौंरा (4)
19. सीढ़ी (3)
20. कपड़ा हो तो मैला और मन हो तो उदास (3)
21. आँसू भरा (3)

चन्द्रकान्त लहरिया, ग्वालियर, म.प्र.
द्वारा भेजी गई वर्ग पहेली पर आधारित

वर्ग पहेली - 104 का हल चकमक के मई, 2000 अंक में छपेगा। हल भेजने के लिए वर्ग पहेली की जाली को चकमक से न काटें। बल्कि संकेतों के नम्बर डालकर शब्द लिखकर भेज दें। सर्वशुद्ध हल भेजने वालों को चकमक का मई, 2000 का अंक उपहार में भेजा जाएगा।





सब कुछ ऊटपटाँग

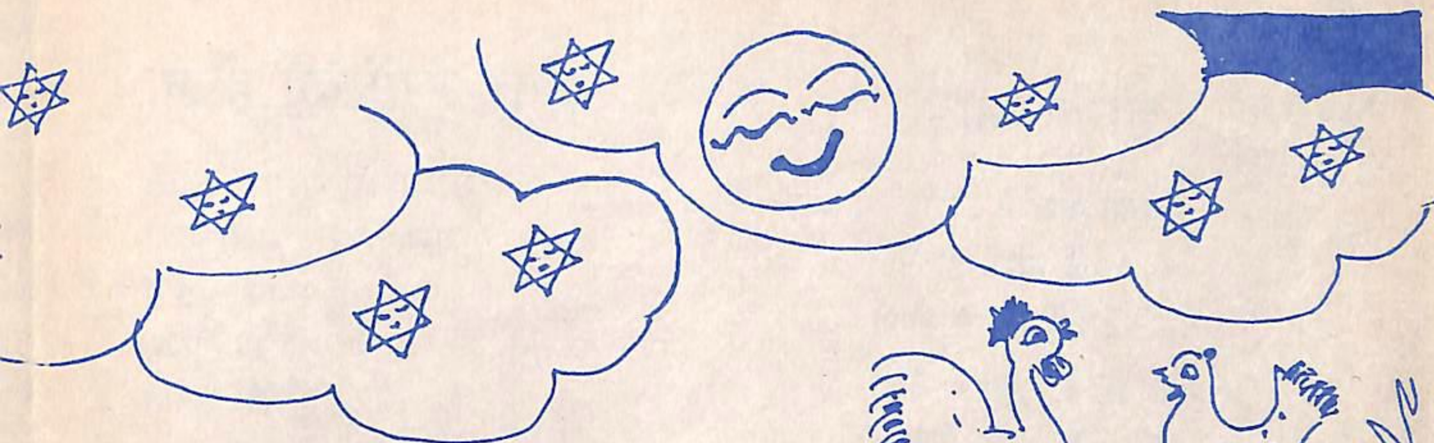
इस होली पर चढ़ गई,
जाने कैसी भाँग,
जंगल में होने लगा,
सब कुछ ऊटपटाँग।

भालूजी राजा बने,
किया एक ऐलान,
अब जंगल में ना लगे,
नाई की दुकान।

बिल्ली मौसी से कहे,
चूहा सीना तान,
कोने में बैठी रहो,
पकड़े अपना कान।

मुर्गी भी करने लगी,
जाने क्या अंधेर,
अण्डे देना बन्द कर,
दे देती है बेर।





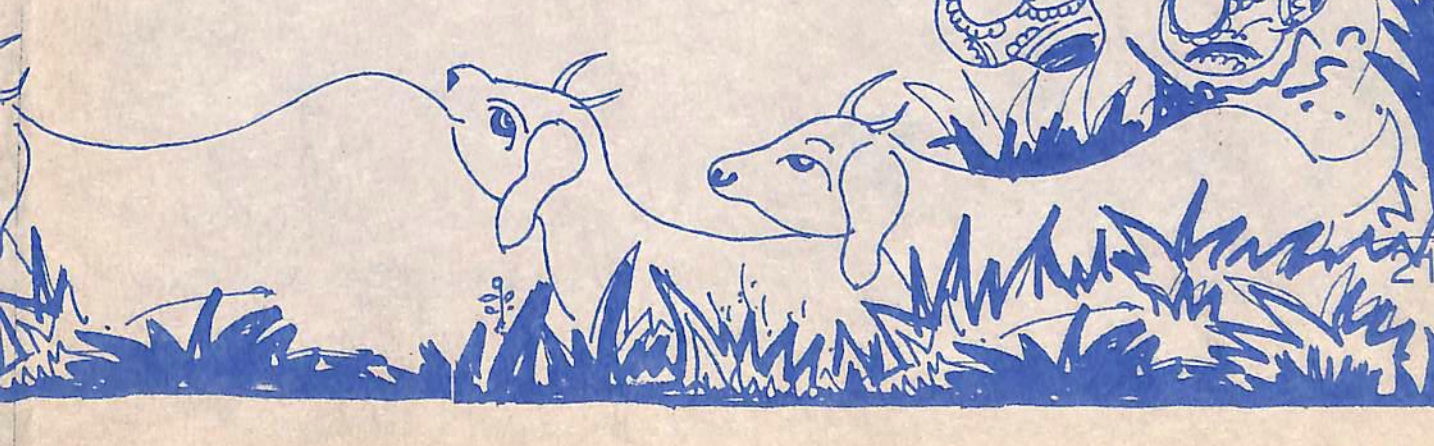


रोज़ सबेरे छेड़ते,
गधे चिपोई राग,
सो जाते चंदा तारे,
जाते मुर्गे जाग।

खुला मेमनों के लिए,
हँसी-खुशी स्कूल,
शेर पढ़ाए ककहरा,
खेले साथ बबूल।

एक आम का पेड़ था,
लटके थे सौ आम,
अस्सी श्यामू ले गया,
और बयालीस राम!

● दुर्गेश नंदन शर्मा
● चित्र : आशा रोमन



मेरा पन्ना

होली आई

देखो आई रे होली
अलबेली प्यारी होली
सबने बनाई अपनी टोली
और खेली जमकर होली
लाल हरा नीला पीला
हर चेहरे पर रंग है खिला
किसी ने बनाया रंग हाथ से
कोई लाया रंग बाजार से
हर किसी ने रंग के पैकेट खोले
और सब एक साथ हैं बोले
होली आई रे होली

● गोवर्धन सिंह चौहान, रामपुरा, मन्दसौर, म.प्र.

आई रंगों की होली

रंग, अबीर, गुलाल लुटाते
घूम रहे सब गली-गली
खुशियाँ सबपे छाई हैं
आई रंगों की होली।
रंग छींटते गुलाल उड़ाते
बच्चों की निकली टोली
रंगीन हो गए सभी के चेहरे
आई रंगों की होली।
सभी ने फिर पिचकारी ले ली
सबने पिचकारियाँ खोली
भीग गए फिर सभी के कपड़े
आई रंगों की होली।

● तरुण सारथी, छठवीं, नगरनार, जगदलपुर, म.प्र.



● अपाला मिश्रा, पाँच वर्ष, देहरादून, म.प्र.

नकल का नतीजा



● सीता, चौथी, बेहरापुरा, बैतूल. म.प्र.

एक बार की बात है। मैं, मेरे मम्मी, पापा और मेरी बड़ी बहन मेरे पापा के काम से बाहर एक होटल में रुके थे। मैं उस समय सिर्फ तीन वर्ष की थी। तभी मेरी बड़ी बहन एक कागज़ लेकर पलंग पर चढ़कर पतंग उड़ा रही थी। मैंने उसकी नकल कर पतंग उड़ाने लगी। अचानक मेरा पैर फिसल गया और मेरा सर दीवार के कोने से टकरा गया। मेरा सर फूट गया और खूब खून निकला।

मेरी मम्मी, पापा खूब परेशान हो गए। मम्मी ने मेरे सर पर टावेल लगाया और वो टावेल खून से लाल रंग का हो गया था। मम्मी, पापा मुझे अस्पताल ले गए। मम्मी, पापा का रोते-रोते हाल-बेहाल हो गया। उस घटना के दिन से मुझे होश आया और तब से मैंने किसी की नकल न करने की कसम खाई।

● अंकिता शर्मा, पांचवीं, भोपाल, म.प्र.

पहेलियाँ

1

राजा के बाग में नहीं
रानी के बाग में नहीं
खाओ तो स्वाद नहीं
फोड़ो तो गुठली नहीं

2

ऊँचा कुल और ऊँची जात
मेरी सखी में तों से पूछत
काय से माँगत खात

3

जंगली से बान्दरी घर छिपाए
खान घी शक्कर की
खाने वाली घुरे पे मकान

4

एँ ऊ आ आकाश में उड़ते है
मगर पानी में रहता है।

5

चार खम्बों पर चलते देखा
आगे अजगर पलते देखा।

● देवशरण, मड़देवरा, छतरपुर, म.प्र.

मेरा पन्ना

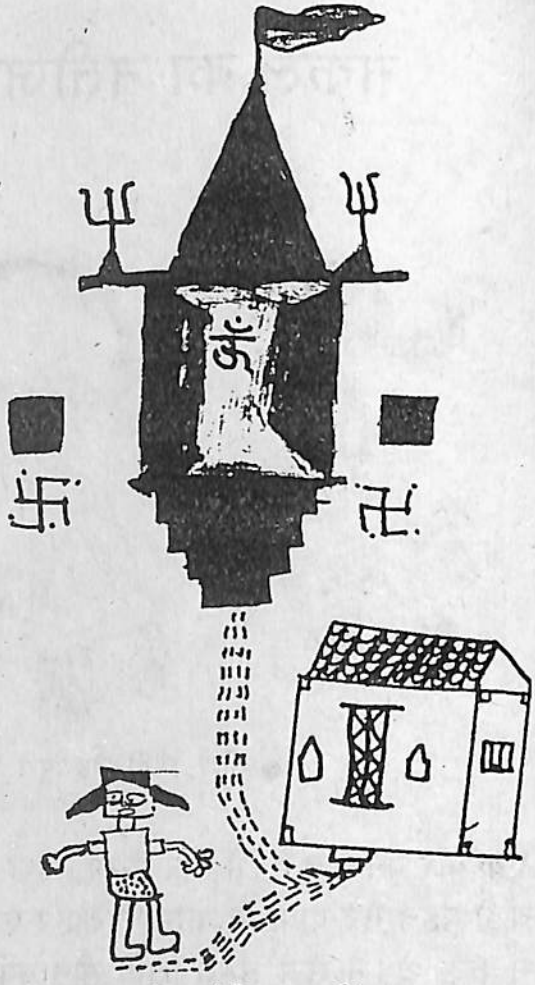
बाग और मन्दिर की सैर

एक बार मैं बीकानेर में थी। हमारी छुट्टियाँ चल रही थी। मेरी नानी रोज सुबह 4 बजे उठकर नहाती है। पूजा-पाठ करती है और मन्दिर जाने को तैयार होती है।

एक बार मैंने कहा कि मैं भी मन्दिर जाऊँगी। दूसरे दिन मैं भी नहाके तैयार होकर मन्दिर गई। उस मन्दिर में बहुत मन्दिर थे।

वापस आने लगे तो वहाँ मेरी नानी एक बगीचे में बैठ गई। करीब 8 बज चुकी थी। भीड़ बढ़ रही थी। मैंने वहाँ झूला झूला और फूल तोड़े। फिर टोकरी में फूल रखकर हम वापस घर आ गए।

● दीप्ती चौधरी, छतरगढ़, बीकानेर, राजस्थान



● मनोज पटैरिया, छठवीं, छतरपुर, म.प्र.

मेरा पन्ना के पाठकों और लेखकों के लिए

अभी तुम सब परीक्षा में व्यस्त होगे। परिक्षाओं से निपटने के बाद कुछ वक्त कविता, कहानी लिखने में और कुछ चित्र बनाने में भी लगाना।

अपने आसपास जो कुछ देखते हो, उसी में से रचनाओं के लिए विषय चुनो। मसलन-

- तुम्हारे स्कूल में घटी कोई घटना हो।
- तुम्हारे गाँव या मोहल्ले में कोई ऐसी बात हुई हो जिसे तुम और लोगों को भी बताना चाहते हो।
- इसके अलावा कुछ ऐसी बातें जिन पर तुम सोचते हो और जिन पर तुम दूसरों से चर्चा करना चाहते हो।

हम तुम्हारी हर रचना का स्वागत करते हैं। इसलिए जो भी लिखो हमें भेजने में हिचकिचाना नहीं। सिर्फ इतना ही ख्याल रखना होगा कि रचनाएँ तुम्हारी अपनी लिखी हों। कहीं से नकल की हुई कोई कविता, कहानी या चित्र तुम्हारी रचना तो नहीं कही जाएगी न!

जिनकी रचनाएँ चकमक में प्रकाशित होती हैं उन्हें छह माह चकमक उपहार में भेजी जाती है।

तो लिखो और भेजो। हम तुम्हारी रचनाओं का इन्तज़ार कर रहे हैं।

● चकमक

प्यारा कुनबा



● निकोलाई नोसोव

यह कहानी मशहूर रूसी लेखक निकोलाई नोसोव की लिखी हुई है। तुम में से बहुतों ने शायद इनकी लिखी नजानू की कहानियाँ पढ़ी होंगी। इस कहानी की खासियत यह है कि इसमें दो बहुत ही मज़ेदार खुरापाती बच्चे हैं, तुम्हारी ही तरह के! दोनों अक्सर इस जुगाड़ में लगे रहते हैं कि कुछ किया जाए, कुछ बनाया जाए। मीश्का और कोल्या, दोनों कभी भाप से चलने वाला इंजन बनाने में लगे रहते हैं तो कभी कुछ। चाहे यह सब करने में कितनी ही मुश्किलें आएँ, चाहे घर के बड़े लोग कितनी ही डाँट-फटकार करें, ये हार नहीं मानते। चूँकि कहानी काफी लम्बी है, इसलिए हम यहाँ इसका एक बड़ा हिस्सा दे रहे हैं। बाकी के हिस्से चकमक के अगले अंकों में जारी रहेंगे। यहाँ पढ़ो कि इस बार ये क्या बनाने की सोच रहे हैं।

बड़ा फैसला

यह घटना उसी दिन की है। मीश्का और मैं टिन के डिब्बे से भाप का इंजन बना रहे थे कि बीच ही में वह फट गया। मीश्का ने डिब्बे में पानी को बहुत ज़्यादा गरम कर दिया, जिससे डिब्बा फट गया और भाप से मीश्का का हाथ जल गया। खैर, उसकी माँ ने फ़ौरन उस पर नेफ्था का मलहम लगा दिया। यह बड़ी रामबाण दवा है। हाँ, मेरे कहने का यक़ीन न हो, तो कभी मौका पड़ने पर खुद लगाकर देख लीजिए। लेकिन ध्यान रखिए, मलहम जलते ही लगा लेना, नहीं तो चमड़ा निकल आएगा।



भाप का इंजन फट जाने पर मीश्का की माँ ने हमें फिर उसके साथ नहीं खेलने दिया। इतना ही नहीं, बल्कि उसे कूड़े में फेंक दिया। कुछ दिन तो हम सोच ही नहीं पाए कि अब क्या किया जाए, और यह समय बड़ी मुश्किल से कटा।



बसंत का आरम्भ था। बरफ हर जगह पिघल रही थी। गलियों में कलकल करते पानी के छोटे-छोटे नाले बह रहे थे। वसंत के सूर्य की तेज़ रोशनी खिड़कियों से अन्दर आ रही थी। लेकिन मीश्का और मैं बिल्कुल उदास थे। हम दोनों की अद्भुत जोड़ी है – कुछ काम किए बिना हमें चैन नहीं आता। जब हमारे पास कोई काम नहीं होता, हमारा मन नहीं लगता। हम कुछ न कुछ उधेड़बुन में लगे रहते हैं और आखिर कुछ काम ढूँढ ही निकालते हैं।

एक दिन मैं मीश्का से मिलने गया और देखा कि वह मेज़ के पास, हाथों में सिर थामे, कोई किताब पढ़ने में लीन है। पढ़ने में वह इतना मशगूल था कि उसको मेरे आने का भी पता न चला। मैंने दरवाज़े को फटाक से बन्द किया, तभी जाकर उसने सिर उठाया।

''ऐं, कौन, निकोलाद्ज़े?'' उसने मुँह फाड़कर हँसते हुए कहा।

मीश्का मुझे मेरे असली नाम से कभी नहीं पुकारता। सब लोग तो मुझे कोल्या कहते हैं, लेकिन मीश्का इसके बजाय मेरे लिए कोई न कोई विलक्षण नाम ढूँढ निकालता है, जैसे निकोला मिकोला, मिकूला सेल्यानीनोविच या मिक्लूखो-माक्लाइ और एक दिन तो उसने मुझे निकोलाकी तक कहा। हर दिन मुझे एक नया नाम मिलता है। लेकिन अगर उसे यही पसंद है, तो मैं बुरा क्यों मानूँ।

''हाँ'', मैंने कहा। ''मैं ही हूँ। कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे हो?''

''बड़ी मज़ेदार किताब है,'' मीश्का बोला, ''आज ही सबेरे अखबार की दुकान से मैंने इसे खरीदा है।''

मैंने पुस्तक को देखा। नाम था 'मुर्गी-पालन'। मुखपृष्ठ पर मुर्गे-मुर्गी का चित्र था और हर पृष्ठ पर मुर्गों के पिंजरों की विविध आकृतियाँ तथा खाके थे।

''इसमें मज़ेदारी की क्या बात है?'' मैंने पूछा। ''मुझे तो यह कोई विज्ञान की पुस्तक लगती है।''

"हाँ, इसीलिए तो यह मज़ेदार है। यह कोई बेसिर-पैर की परी-कथाओं की पुस्तक नहीं है। इसकी हर बात सच है। यह बड़ी उपयोगी पुस्तक है और यही इसकी विशेषता है।"

मीश्का ऐसा लड़का है, जो हर बात की उपयोगिता पर ध्यान देता है। जब कभी उसके पास जेब खर्च की थोड़ी-सी भी रकम होती है, वह इस पुस्तक जैसी कोई उपयोगी वस्तु खरीद लेता है। एक बार उसने 'प्रतिलोम त्रिकोणमितीय फलन तथा चेबिशेव के बहुपद' नामक पुस्तक खरीदी। अलबत्ता उसका एक शब्द भी उसके पल्ले नहीं पड़ा। इसलिए उसने यह फैसला किया कि वह उसे तभी पढ़ेगा, जब वह उसको समझने लायक हो जाए। तब से यह पुस्तक अलमारी में पड़ी-पड़ी मीश्का के लायक होने का इंतज़ार कर रही है।

मीश्का ने पढ़े हुए पृष्ठ पर निशान लगाया और पुस्तक बन्द की।

"इस पुस्तक से तुम कई बातें जान सकते हो," उसने कहा। "मुर्गी, बत्तख, हंस तथा टर्की, सभी के पालन-पोषण की पूरी जानकारी इसमें है।"

"तुम कहीं टर्की पालने की बात ही तो नहीं सोच रहे?"

"नहीं, फिर भी इस बारे में पढ़ना मुझे अच्छा लगता है। मुझे पता चल गया है कि हम इनक्युबेटर नामक यंत्र बना सकते हैं, जिसमें मुर्गी के बिना ही अंडे सेये जा सकते हैं।"

"ऊँह!" मैंने कहा। "यह भी कोई बात है! सभी को यह मालूम है और मैं तो गए साल उसे देख भी चुका हूँ, जब मैं अपनी माँ के साथ फार्म गया था। वहाँ का इन्क्युबेटर रोज़ अंडों से पाँच-पाँच सौ, बल्कि हज़ार तक चूज़े पैदा कर देता था। इतनी तेज़ी के साथ कि उन्हें निकालने का वक्त भी नहीं मिलता था।"

"सच!" मीश्का ने उत्तेजित होकर पूछा। "मुझे नहीं मालूम था। मैं समझता था कि बस मुर्गियाँ ही अंडे से सकती हैं। देहात में मैंने कितनी ही मुर्गियों को अंडे सेते हुए देखा था।"

"अरे, मैंने भी ऐसी कई मुर्गियाँ देखी हैं," मैंने कहा। "हाँ, यह ठीक है कि इनक्युबेटर ज़्यादा अच्छा रहता है। मुर्गी ज़्यादा से ज़्यादा दर्जन भर अंडे ही एक साथ से सकती है, लेकिन इनक्युबेटर में हजारों अंडे एक साथ सेये जा सकते हैं।"

"मालूम है मुझे भी," मीश्का बोला। "यही तो पुस्तक में भी लिखा है। एक बात और है। मुर्गी जब तक अंडों को सेती या बच्चों का पालन-पोषण करती रहती है, वह नए अंडे नहीं देती। लेकिन अगर हमारे पास अंडे सेने के लिए इनक्युबेटर हो, तो मुर्गी अंडे देती ही चली जाती है।"

सेने के बजाय अगर मुर्गियाँ लगातार अंडे ही देती रहीं, तो कितने अधिक अंडे मिल सकेंगे, हमने इसका हिसाब लगाना शुरू किया। अंडों को सेने के लिए मुर्गी इक्कीस दिन लेती है। और बच्चे निकलने के बाद उनके पालने-पोसने में मुर्गी को कितना समय लगता है, यह देखो, तो मालूम होगा कि कोई तीन महीने बाद ही वह फिर अंडे देना शुरू करती है।

"तीन महीने, यानी नब्बे दिन," मीश्का ने कहा। "अगर अंडे सेने में ही न लगी रहे, तो हर साल वह नब्बे अंडे अधिक दे सकेगी, भले ही वह एक ही अंडा रोज़ क्यों न दे। इस हिसाब से दस मुर्गियों वाले छोटे से फार्म में भी साल में नौ सौ अंडे ज़्यादा पैदा होंगे। और अगर हज़ारों मुर्गियों वाले

किसी बड़े सामूहिक फार्म या सरकारी फार्म की सोचो, तो नब्बे हज़ार अधिक अंडे हो जाएँगे। ज़रा सोचो तो! नब्बे हज़ार अंडे!"

इन्क्युबेटर की उपयोगिता पर हम काफी समय तक चर्चा करते रहे।

उसके बाद मीश्का बोला, "भई सुनो, हम अपना एक छोटा-सा इनक्यूबेटर क्यों न बनाएँ और कुछ अंडे सेयें!"

"कैसे बना लें?" मैंने पूछा। "यह कोई इतनी आसान बात थोड़े ही है।"

"मुझे वह इतनी कठिन भी नहीं लगती," मीश्का बोला। "इस पुस्तक में सभी कुछ लिखा हुआ है। मुख्य बात यह है कि अंडों को लगातार इक्कीस दिन गरम रखना चाहिए। उसके बाद चूज़े अपने आप बाहर निकल आएँगे।"

अपने खुद के चूज़े होने का विचार मुझे बड़ा अच्छा लगा। तरह-तरह के पंछियों तथा प्राणियों का मैं बड़ा शौकीन हूँ। गत शरद में हम दोनों अपने स्कूल के प्रकृति-प्रेमी मंडल में शामिल हुए थे। अपने प्रिय पालतू जानवरों के लिए हमने कुछ काम भी किया, लेकिन उसी समय मीश्का को भाप-इंजन बनाने की सूझी और हमने मंडल में जाना बंद कर दिया। मंडल प्रमुख वीत्या स्मिर्नोवा ने हमें धमकाया कि अगर हमने कुछ काम नहीं किया, तो वह हमारे नाम सदस्यों की सूची में से निकाल देगा। लेकिन हमने एक और अवसर देने के लिए उससे प्रार्थना की।

मीश्का कल्पना करने लगा कि जब अपने चूज़े निकल आएँगे, तब कितना मज़ा आएगा।

"कैसे नन्हें-नन्हें और प्यारे-प्यारे चूज़े होंगे वे!" वह बोला। "रसोई-घर का एक कोना हम उनके लिए अलग कर देंगे और वे वहीं रह सकते हैं। हम उनको खिलाएँगे और उनकी देखभाल करेंगे।"

"हाँ, लेकिन इसके पहले हमें काफी कुछ करना होगा। यह मत भूलो कि अंडों में से बाहर आने में उनको तीन सप्ताह लगेंगे।" मैंने कहा।

"तो क्या हुआ? हमें तो बस इन्क्युबेटर तैयार करना है, चूज़े अपने आप निकल आएँगे।"

कुछ समय तक मैं इस बारे में सोचता रहा। मीश्का मेरी ओर उत्सुकता से देख रहा था। मैं समझ गया कि काम को जल्दी से जल्दी शुरू करने के लिए वह उतावला है।

"ठीक है," मैंने कहा। "वैसे भी अभी हमारे पास कुछ और काम भी नहीं है। चलो, यही सही।"

"मैं जानता था कि तुम तैयार हो जाओगे!" मीश्का प्रसन्नता से चिल्लाया। "मैं इसे अकेले ही कर लेता, लेकिन तुम्हारे बिना उसमें आधा भी मज़ा नहीं आता।"

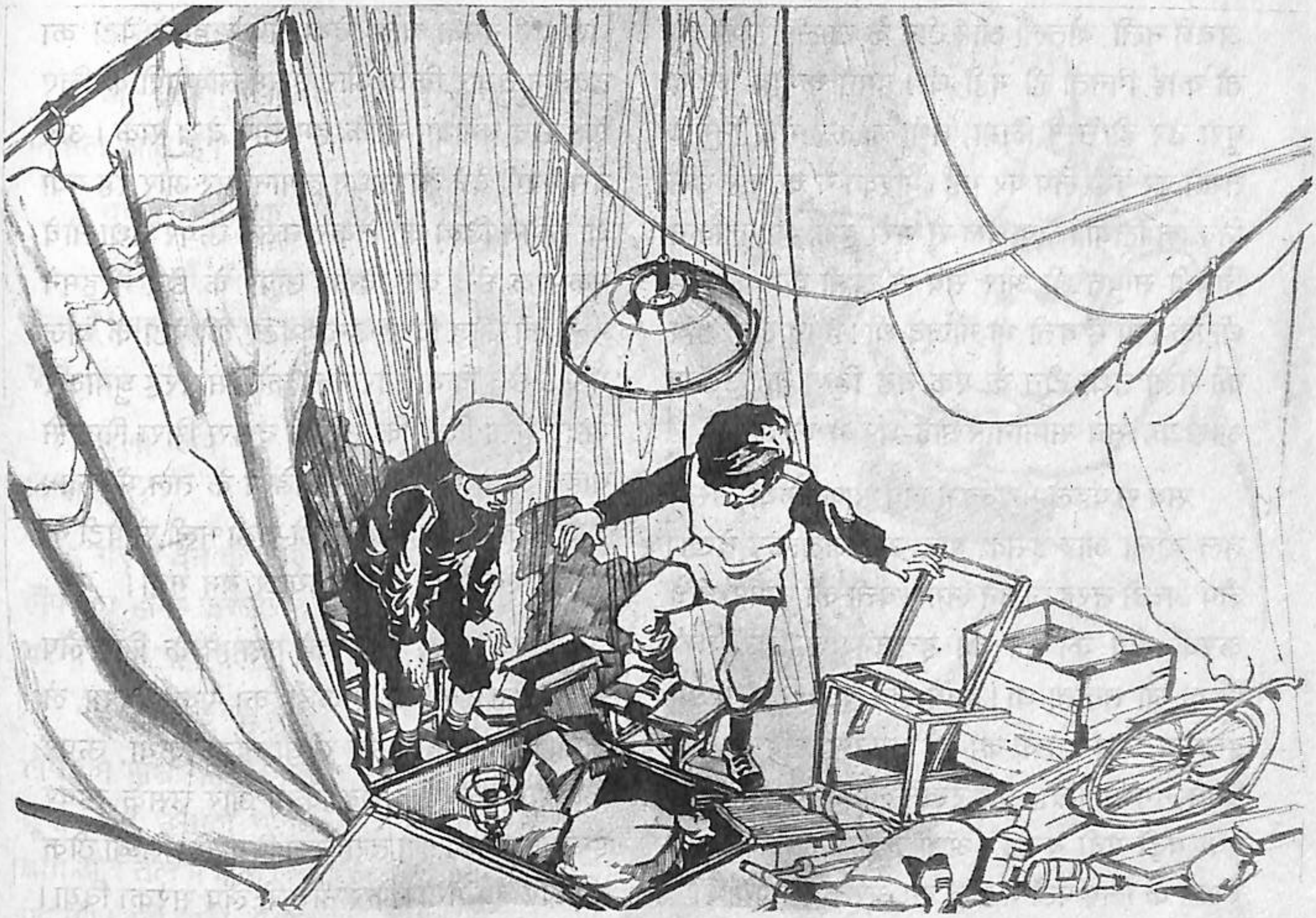
अनचाही रोक

"शायद हमारे लिए इन्क्युबेटर बनाना ज़रूरी नहीं है। अंडों को बस एक बर्तन में डालकर अंगीठी पर रख दिया जाए," मैंने प्रस्ताव रखा।

"अरे नहीं, इससे कुछ न होगा," मीश्का बोल उठा। "आग बुझ जाएगी और सारे अंडे खराब हो जाएँगे। इन्क्युबेटर की विशेषता यह है कि उसमें बराबर 39 डिग्री सेंटीग्रेड ताप रहता है।"

"39 डिग्री ही क्यों?"

"इसलिए कि जब मुर्गी अंडे सेती है, तब उसका ताप यही होता है।"



"तो, क्या मतलब यह कि मुर्गी को भी ताप होता है? मैं समझता था कि केवल आदमियों को ही बुखार आने पर ताप होता है।"

"अरे पागल, आदमी बीमार हो या चंगा, शरीर में ताप हमेशा ही रहता है। हाँ, जब उसे बुखार आता, तब ताप बढ़ जाता है।"

इसके बाद पुस्तक खोलकर मीश्का ने एक चित्र की ओर संकेत किया।

"देखो, इन्क्युबेटर ऐसा होता है। यह पानी की टंकी है, जिसमें एक छोटी नली निकलकर अंडे रखने की पेटी तक गई है। नीचे से टंकी को गरम किया जाता है। नली में होकर गरम पानी बहता है और अंडों को गरमी पहुँचाता है। देखो, यहाँ तापमापी है, जिससे ताप देखा जा सकता है।"

"लेकिन हम यह टंकी कहाँ से लाएँगे?"

"हमें टंकी चाहिए ही नहीं। उसकी जगह हम टीन के खाली डिब्बे का उपयोग कर सकते हैं। हमें छोटा इन्क्युबेटर ही तो बनाना है।"

"और हम उसे गरम कैसे करेंगे?" मैंने पूछा।

"मिट्टी के तेल के साधारण लैंप से। हमारे कबाड़खाने में एक पुराना लैंप कहीं पड़ा हुआ है।"

हम कबाड़खाने में गए। वहाँ एक कोने में बेकार चीज़ों का ढेर लगा हुआ था, जिसकी हम छानबीन करने लगे। वहाँ कितनी ही चीज़ें थीं – पुराने जूते, रबड़ के जूते, टूटा छाता, ताँबे की एक

अच्छी नली, बोतलों और टीन के खाली डिब्बों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। हमने करीब-करीब पूरा ढेर ही छान लिया, तभी जाकर मेरी निगाह तख्ते पर रखे लैंप पर गई। मीश्का ने चढ़कर उसे निकाल लिया। लैंप धूल से भरा हुआ था, लेकिन चिमनी साबुत थी और सब से खुशी की बात यह थी कि लैंप में बत्ती भी मौजूद थी। हमने लैंप, ताँबे की नली तथा टीन के एक बड़े डिब्बे को उठाया और यह सब सामान रसोई-घर में ले आए।

सब से पहले मीश्का ने लैंप साफ किया, उसमें तेल डाला और इसके बाद उसे जलाकर देखा। लैंप अच्छी तरह जलने लगा। बत्ती को ऊपर-नीचे करके लैंप की लौ को इच्छानुसार छोटा-बड़ा किया जा सकता था। हमने लैंप बुझाया और अब इन्क्युबेटर बनाने के काम में लग गए। सब से पहले हमने लगभग पंद्रह अंडे रखने लायक प्लाइवुड की एक बड़ी पेटी बनाई। अंडों को ठीक तथा गरम रखने के लिए पेटी में रूई का अस्तर लगाया और उस पर नमदा चढ़ा दिया। फिर हमने पेटी का ढक्कन तैयार किया और उसमें तापमापी के लिए एक छेद बनाया, ताकि हम ताप देख सकें। अब बस गरमी देने का साधन लगाना भर और रह गया था। हमने डिब्बे को लेकर उसमें ऊपर तथा नीचे एक-एक छेद कर दिया। ऊपर के छेद में हमने नली को जोड़ दिया, इन्क्युबेटर की पेटी के बाजू में एक छेद किया और नली को इस तरह घुमाकर अंदर घुसा दिया कि उसका दूसरा सिरा फिर से बाहर आ गया। उसे हमने डिब्बे के तल में बनाए छेद से जोड़ दिया। इस मुड़ी-तुड़ी नली से पेटी के अन्दर एक तरह का रेडियेटर बन गया।

अब टीन के डिब्बे को गरमाने के लिए लैंप रखना था। मीश्का लकड़ी का एक बक्सा ले आया। बक्से को हमने सीधा खड़ा किया, ऊपर की ओर एक गोल छेद किया और उसके ऊपर इन्क्युबेटर को इस तरह रख दिया कि डिब्बा ठीक छेद पर बैठ गया। फिर नीचे से लैंप सरका दिया।



आखिर सब तैयार हो गया। हमने टीन के डिब्बे को पानी से भरा और फिर लैंप जला दिया। डिब्बे और नली का पानी गरम होने लगा। तापमापी का पारा चढ़ने लगा और थोड़ी ही देर में वह 39 डिग्री तक पहुँच गया। ताप और भी बढ़ जाता, अगर मीश्का की माँ उसी समय अन्दर न आ जातीं।

''अब तुम दोनों को क्या सूझी है? सब जगह से मिट्टी के तेल की गंध आ रही है!'' उन्होंने कहा।

''हम इनक्युबेटर बना रहे हैं,'' मीश्का ने कहा।

''कैसा इनक्युबेटर?''

''अरे, वही, जिससे अंडों में से चूज़े निकल आते हैं।''

''चूज़े? क्या बक रहे हो?''

''देखो माँ, मैं तुम्हें दिखा ही देता हूँ। यहाँ अंडों को रखा और यहाँ लैंप...''

''भला, लैंप किसलिए?''

''गरमी देने के लिए। लैंप का होना ज़रूरी है, वरना काम नहीं चलेगा।''

''बकवास है, मैं तुम्हें लैंप को हाथ नहीं लगाने दूँगी। तुम उसको उलट दोगे और तेल में आग लग जाएगी। नहीं, नहीं, मैं यह नहीं होने दूँगी।''

''माँ, मेहरबानी करो, हम ध्यान रखेंगे।''



''न, भई न, जलते हुए लैंप के साथ मैं तुम्हें नहीं खेलने दूँगी। आखिर तुम चाहते क्या हो! पहले खौलते हुए पानी से हाथ जला लिया और अब घर जलाओगे!''

मीश्का ने ढेरों दलीलें दीं और खुशामदें कीं, लेकिन उसकी एक न चली।

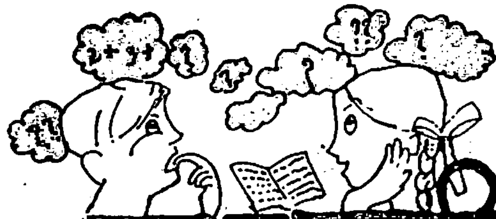
मीश्का बेहद दुखी हो गया।

''मिट्टी में मिल गया इनक्युबेटर,'' वह बोला।

आगे क्या हुआ? इनक्युबेटर बना या नहीं? पढ़ो अगले अंक में।



चित्र : सौरभ दास



माथापच्ची

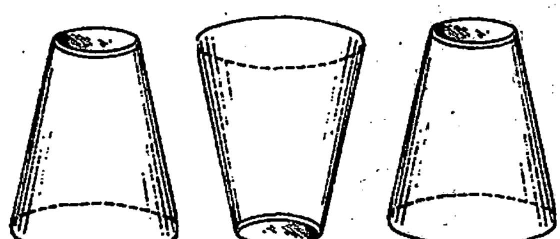
(1)

एक थैले में 90 रुपए के सिक्के हैं। यदि 50 पैसे, 25 पैसे और 10 पैसे के सिक्के 2:3:5 के अनुपात में हों तो क्या तुम बता सकते हो कि इस थैले में 25 पैसे के कितने सिक्के होंगे?

(2)

एक सांकेतिक भाषा में 'तोम कुन सूद' का अर्थ है 'कुत्ते हैं भौंकते। 'कुन जो भोप' का अर्थ है 'कुत्ते और गधे।' 'भोप तोम को' का अर्थ है 'गधे हैं पागल'। अब बताओ इस भाषा में 'पागल के लिए कौन सा शब्द इस्तेमाल किया गया है।

(3)



एक टेबिल पर लाइन से तीन गिलास रखे हैं पहला गिलास उल्टा, दूसरा सीधा, तीसरा उल्टा। क्या तुम सिर्फ तीन चालों में इन तीनों गिलासों को सीधा कर सकते हो। हाँ लेकिन एक चाल में तुम्हें दो गिलासों की स्थितियाँ बदलनी होंगी।

(4)



मुझे उन्नीस रुपए कीमत की एक किताब खरीदनी थी। दुकानदार के पास सिर्फ 5-5 रुपए के नोट और मेरे पास सिर्फ तीन-तीन रुपए के नोट थे। क्या इन दोनों प्रकार के नोटों से समस्या सुलझ सकती है?

(5)

यदि एक चीज़ दूसरी से पचास प्रतिशत ज़्यादा है तो दूसरी, पहली चीज़ से कितना कम है?

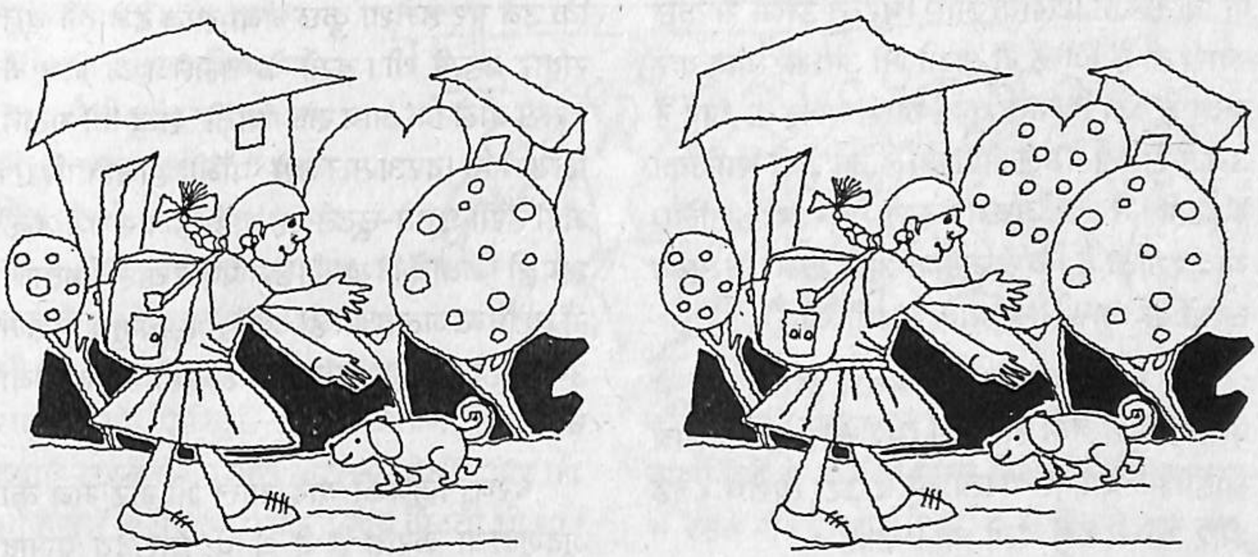
(6)

ज़रा हिसाब तो लगाओ कि 5 मीटर चौड़े और 4 मीटर लम्बे एक कमरे में दो आदमी ज़्यादा से ज़्यादा कितनी दूर खड़े हो सकते हैं?

(7)

अब एक बिल्कुल सरल सी माथापच्ची। चार सालों में कितने महीने अट्ठाइस दिनों के साथ आते हैं?

(8)



ऊपर के दोनों चित्र हैं तो एक से ही। परन्तु इनमें कुछ अन्तर भी हैं। क्या तुम कम स कम 5 ऐसे अन्तर ढूँढ सकते हो?

(9)

$$(1-8)\times(2-8)\times(3-8)\times \ldots\ldots\ (100-8)\times(101-8)\ \ldots\ldots = ?$$

ऊपर के समीकरण को ध्यान से देखो। समीकरण में कोष्टक के अन्दर दो अंक हैं। दूसरा अंक सब में एक ही है, जबकि पहले में एक बढ़ता हुआ क्रम है। समस्या यह है कि हमें इस समीकरण का हल निकालना है।

कहीं तुम गुणा करने में तो नहीं जुट गए। भारी-भरकम गुणा किए बगैर भी इसे हल किया जा सकता है। वह भी सिर्फ एक या दो मिनिट में। बता सकते हो कैसे?



अब तक इस श्रृंखला में कई लोगों ने अपने स्कूली जीवन और शिक्षकों की बातें लिखीं। तुम्हें यह श्रृंखला कैसी लग रही है? क्या तुम इसके बारे में कोई सुझाव देना चाहोगे? हम तुम्हारे पत्रों का इन्तज़ार कर रहे हैं। और हाँ इसके साथ ही तुम भी अपने माँ-पिताजी से और दूसरे बड़े लोगों से कहो, कि वे अपने शिक्षकों के बारे में याद करके कुछ लिखें।

ऐसे थे मेरे शिक्षक

आज तक लगभग सोलह वर्ष के छात्र जीवन में कितने ही शिक्षक आए। परन्तु उनमें से कुछ खास ही हैं जिन्हें मैं अभी भी अक्सर याद कर लेता हूँ। जो शिक्षक कुछ खास वजह से याद हैं उनमें सबसे पहले मेरी माँ हैं जो मेरी शिक्षिका भी रहीं। मैं उन्हें अच्छा पढ़ाने से ज़्यादा इसलिए याद रखता हूँ कि वे मुझमें और कक्षा के अन्य छात्रों में काफी भेदभाव रखती थीं।

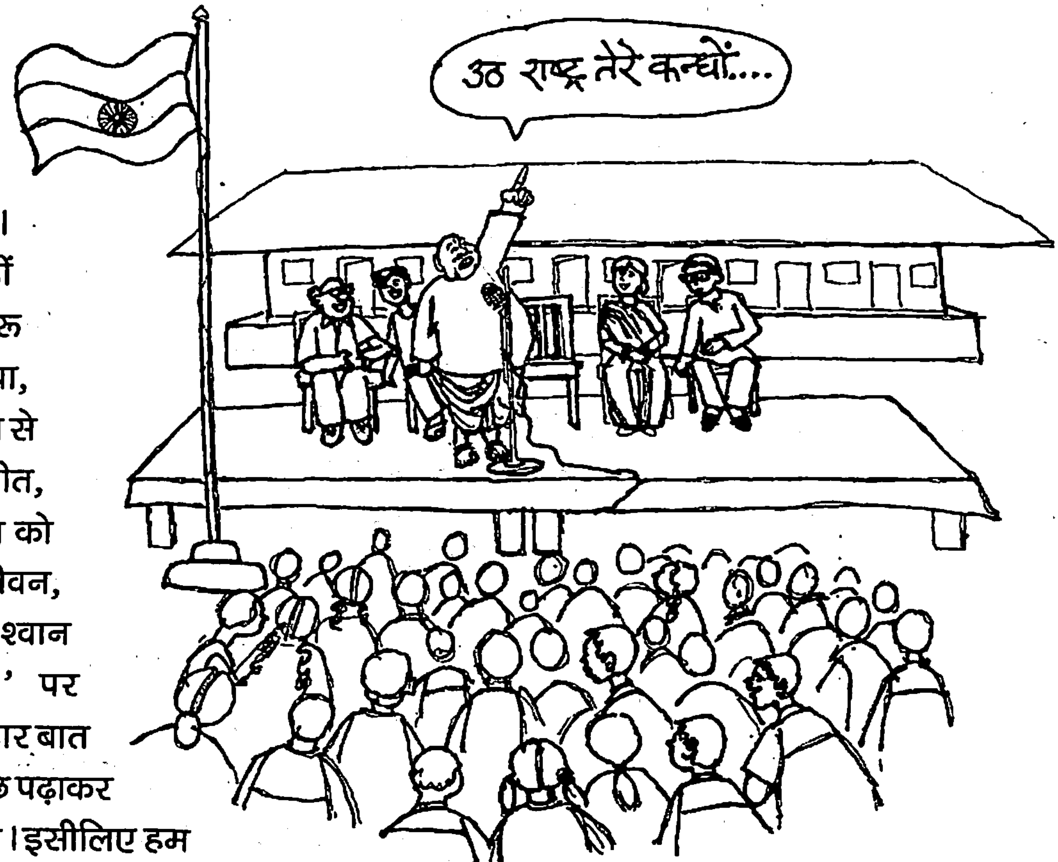
मैं चाहे जितना भी अच्छा करता पर वे ज़्यादा खुश नहीं होती थीं। पर कोई दूसरा छात्र थोड़ा भी प्रयास करता तो वे उसे विशेष स्नेह और प्रोत्साहन देती थीं। कभी पट्टी पर बैठने के लिए अगर झगड़ा हो जाता तो मुझे ही डाँट खानी पड़ती, चाहे दूसरा छात्र गलत हो या सही। हालाँकि यह सब मुझसे अधिक अपेक्षा रखने की वजह से था, यह बात मुझे कुछ समय बाद ही समझ में आई। लेकिन उसे मैं आज तक भूल नहीं पाया हूँ।



मेरे एक दूसरे शिक्षक मुझे इसलिए याद हैं कि उन पर हमेशा कुछ नया ज्ञान देने की धुन सवार रहती थी। इसी के चलते एक दिन वे हमसे बोले कि आप सब 'पानी' शब्द को गलत लिखते हो। दरअसल उसे 'पाँनी' होना चाहिए। मेरी हँसी छूटते-छूटते रह गई। हम सबने उन्हें अपनी किताबें दिखाईं। इस पर वे बोले किताबों में तो प्रिन्ट गलत भी हो जाते हैं। सचमुच ही हम उन्हें नहीं समझा पाए और हमें ही शान्त होना पड़ा।

परन्तु जिनकी याद आज भी मेरे मन को गुदगुदाया करती है वे थे पं. वासुदेव प्रसाद शर्मा। वे माध्यमिक कक्षाओं में हमें संस्कृत और सामाजिक अध्ययन पढ़ाया करते थे। उनकी खोपड़ी से लगभग सारे बाल गायब थे। इसलिए माथे और सिर का विभाजन करने वाला मात्र रोली का तिलक होता था। गोरा रंग और रंग से मेल खाती उनकी सफेद भौहें थीं। कद छोटा मगर पेट मोटा था। जब वे धोती का एक छोर हाथ में लेकर चलते तो उनकी आगे निकली तोंद विचित्र प्रकार से हिलती थी।

समय का उन्हें विशेष ध्यान रहता था इसलिए पीरियड बजते ही तुरन्त कक्षा में हाज़िर हो जाते। और हाज़िरी ही नहीं आते ही पढ़ाई शुरू कर देते। पढ़ाई क्या, बात स्वतंत्रता संग्राम से शुरू होकर देश के अतीत, वर्तमान और भविष्य को साथ लेती हुई छात्र जीवन, अनुशासन और "श्वान निद्रावको ध्यानम्" पर खत्म होती। पर मज़ेदार बात यह थी कि वे बहुत कुछ पढ़ाकर भी कुछ नहीं पढ़ाते थे। इसीलिए हम सभी उनके पीरियड में बस अपनी हँसी को दबाए रखने का प्रयास करते रहते थे। और जो भी इसमें असफल हो जाता खूब पिटता भी था। पर एक बात थी, वे जो भी पढ़ाते खूब दम से पढ़ाते थे। उनकी आवाज़ ही इतनी बुलन्द थी कि जब वे पढ़ाते थे तो दूसरी कक्षाओं में बैठे शिक्षक भी पढ़ाना बन्द कर चुपचाप मुस्कराते और उनका आख्यान सुनते।



राष्ट्रीय पर्वों या अन्य किसी उत्सव के समय उनका भाषण ज़रूर होता था। सभी शिक्षक 'कुछ बोलने' के नाम पर एक साथ मुस्कराते हुए पण्डित जी की ओर इशारा कर देते थे। वे तो तैयार ही रहते थे, तुरन्त खड़े होकर जोश के साथ वे सारी बातें कहते थे जो उनके दिल में गुबार की तरह भरी होती थीं - स्कूल की दुर्दशा, पालकों की लापरवाही, देश की अवनति, भ्रष्टाचार, छात्र जीवन, राजनीति, नागरिकों के कर्तव्य सभी विषय उनके भाषण में रहते थे। वे सामने शून्य में देखते हुए इस बात से बेखबर रहते थे कि तालियों के साथ दबी-दबी हँसी भी फूट रही है। फिर अन्त में हमेशा ही जब वे सोहनलाल द्विवेदी की वे पंक्तियाँ फिट करते - "उठ राष्ट्र तेरे कन्धों...." तो तालियों की गड़गड़ाहट और ठहाके गूँज उठते। पंडितजी गर्व से मुस्कराते और पसीना पोंछते बैठ जाते थे।

एक बार पंडितजी से किसी ने कह दिया, "क्या बात है, बच्चे आपके अनुशासन में नहीं रहते, शायद आप सख्ती नहीं करते।"

यह तो मधुमक्खी के छत्ते को छेड़ने वाली बात हो गई। दूसरे दिन पण्डितजी अपने हाथ में मोटा-सा डण्डा लेकर आए और एक ही दिन में



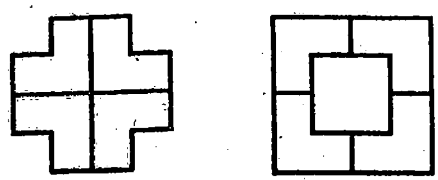
उन्होंने सभी को अनुशासन का पाठ पढ़ा दिया। मेरी पीठ पर उन्होंने तीन-चार मुक्के सिर्फ इस बात पर जमा दिए कि मैं बस्ता बन्द करके बैठा था।

जब भी कम शिक्षक और ज़्यादा छात्रों की बात होती तो वे बड़ी दावेदारी से कहते थे, "जब एक चरवाहा सौ भेड़-बकरियों को घेर सकता है, तो क्या एक शिक्षक पचास बच्चों को नहीं सँभाल सकता?"

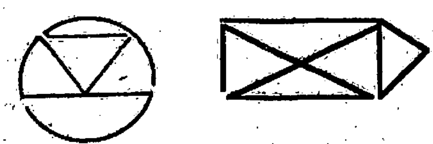
कहने की ज़रूरत नहीं है कि पंडित जी अपने छात्रों को घेरते ही थे। इसलिए न छात्रों को उनसे कोई शिकायत थी, न उन्हें छात्रों से।

● प्रशान्त कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर, म.प्र.
● चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

माथापच्ची : हल फ़रवरी, 2000 अंक के

1. 

2. ✹ इस चिन्ह की जगह 42 होना चाहिए।
3. 'अ' आकृति में त्रिभुजों की संख्या ज़्यादा हैं। कितने यह तुम्हें ही खोजना है।
4. आठ भालू हैं।
5. आकृति 1 और 3 को ही बिना हाथ उठाए बनाया जा सकता है।



6. ❖ की जगह 9 और ✳ की जगह 1 हो सकता है।
7. सामने खड़ी महिला उस व्यक्ति के बेटे की पत्नी है।

वर्ग पहेली 102 : हल

प्र	मु	ख				म	चा	न
		स	म	झ	द्दा	र		
आ	वा	रा		ब		ता	री	फ
द			भि	ला	ई			री
म	दी	ना				आ	मा	दा
क			गु	बा	र			बा
द	लि	त		व		प	सं	द
		पा	ट	ली	पु	त्र		
य	म	क				क	बी	र

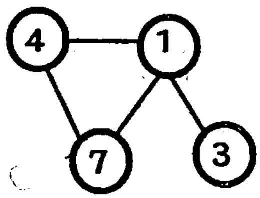
वर्ग पहेली 102 का सही हल भेजने वाले पाठक हैं – अनिमेष उपाध्याय, काशीपुर, उ.प्र.। चम्पालाल कुशवाहा, हिरणखेड़ा, होशंगाबाद; हबीब अनवर राही, जावद; आरती चौहान, टिमरनी, सभी म.प्र.। स्मिता मुखर्जी, पटपड़गंज, दिल्ली। इन सभी को चकमक का यह अंक उपहार में भेजा जा रहा है।



कनेक्शन गेम

चलो, इस बार खेलते हैं गणित से जुड़ा एक मज़ेदार खेल 'कनेक्शन गेम।' बस थोड़ा -सा जोड़-घटाना करके तुम इसकी आकृति बना सकते हो। और थोड़ी-सी दिमागी कसरत से इसे हल भी कर सकते हो।

पहले एक छोटा-सा उदाहरण लें कि कैसे खेलते हैं कनेक्शन गेम। यह है सिर्फ 4 अंकों वाले कनेक्शन गेम की आकृति।



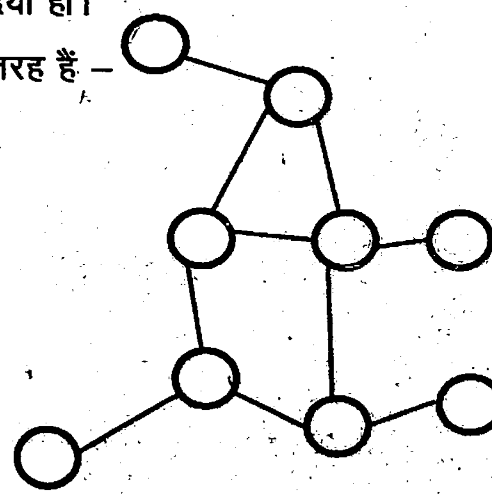
हर गोले में एक अंक लिखा है और गोले किसी दूसरे गोले से एक लाइन से जुड़े हैं। जैसे (1) वाला गोला लें। (1) वाला गोला (3) वाले और (7) वाले गोले के अलावा (4) वाले गोले से भी जुड़ा है।

कनेक्शन गेम में किसी भी अंक के कुल सीधे कनेक्शनों का जोड़ उस अंक का कनेक्शन नम्बर होता है। इस प्रकार (1) के कुल कनेक्शन नम्बर हैं – 1 = 3+7+4 और उनका जोड़ 1 = 14 और (7) के कुल कनेक्शन नम्बर हैं 7 = 1+4 यानी 7 = 5। इसी प्रकार (3) और (4) के कुल कनेक्शन तुम निकालो। *यहाँ = निशान को बराबर का निशान मत समझना। नहीं तो गणित का गुड़ गोबर हो जाएगा। यहाँ = का मतलब है कनेक्शन नम्बर। मतलब जहाँ लिखा हो (7 = 5) तो इसे तुम पढ़ोगे –सात का कनेक्शन नम्बर पाँच।*

अब देखते हैं कि यह खेले खेलते कैसे हैं। वैसे इसे दो-तीन तरीकों से खेल सकते हैं। पहला तरीका है कनेक्शन गेम की आकृति के गोले भरना जबकि हर अंक के कुल कनेक्शनों का जोड़ या कनेक्शन नम्बर दिया हो।

जैसे एक आकृति नीचे दे रहे हैं। इसके कनेक्शन इस तरह हैं –

1 = 32
2 = 7
3 = 12
4 = 9
5 = 11
6 = 3
7 = 17
8 = 1
9 = 12

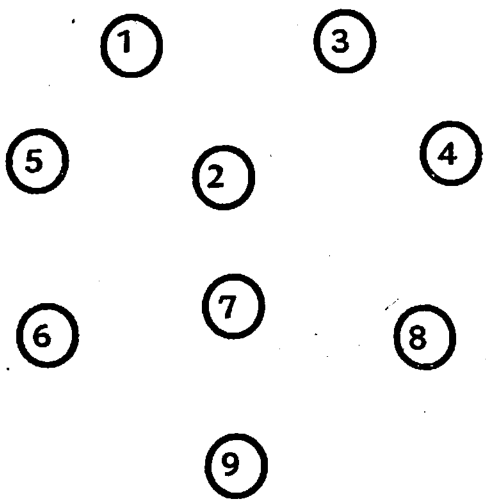


इन अंकों को (1 से 9 तक) गोलों में भरकर देखो। दो-चार बार कोशिश करने पर तुम इसे कनेक्शन नम्बर के हिसाब से ज़रूर भर पाओगे।

इस तरह की दस-बीस आकृतियाँ हल करने के बाद तुम्हें इसमें महारत हासिल हो जाएगी।

कनेक्शन गेम खेलने का दूसरा तरीका है, जब तुम्हें गोलों में अंक दिए हों और साथ ही इन अंकों के कुल कनेक्शन नम्बर भी दिए हों। इन दोनों जानकारियों की मदद से तुम गोलों को लाइन से जोड़ोगे यानी कनेक्शन बनाओगे। ताकि कनेक्शन आकृति में अंकों के कुल कनेक्शनों का जोड़, दिए गए कनेक्शन नम्बर जितना हो जाए।

एक आकृति का उदाहरण लेकर देखते हैं –



1 = 16
2 = 29
3 = 7
4 = 13
5 = 1
6 = 19
7 = 17
8 = 15
9 = 21

इस आकृति को अपनी कॉपी या स्लेट पर उतारकर इन गोलों को पेंसिल या चॉक से लाइन से जोड़कर देखो। क्या सभी अंकों के कुल कनेक्शनों का जोड़ उतना ही आया, जितना तुम्हें ऊपर की तालिका में दिया है? यदि नहीं आया तो फिर नए कनेक्शन बनाओ। जब सही कनेक्शन बन जाएँ तो पेन से पक्की लाइन खींच लो।

तुम खुद भी नई आकृतियाँ बनाकर देखना। तरह–तरह से खुद सवाल बनाकर हल करते जाने से तुम जल्दी ही इस खेल में माहिर हो जाओगे। फिर तुम नए सवाल बनाकर अपने दोस्तों के साथ मिलकर उनका हल भी कर सकते हो। कितने नए सवाल बनाए और कितनों का हल किया, हमें लिखना। ●●

पाठक लिखते हैं

चकमक दिन प्रतिदिन एक बहुत अच्छी पत्रिका के रूप में सामने आ रही है। जैसे की चकमक ने पिछली सदी में पाठकों का मन जीता है, आशा है इस नई सदी में भी चकमक पाठकों का दिल बहलाती रहेगी। चकमक से बच्चों की कई आशाएँ जुड़ी हैं और बच्चों द्वारा भेजी गई रचनाओं से चकमक और अच्छी होती जाएगी।

● अक्षया शर्मा, सातवीं, भोपाल, म.प्र.

मैंने फरवरी 2000 का अंक देखा उसमें 'बूझो डिब्बे में क्या है' बहुत अच्छा लगा। यह चित्र देखने में बहुत अच्छा लगता है तो समझो खेलने में कितना मज़ा आएगा। तो फिर मैंने डिब्बा लिया और बड़ा छेद कर दिया। पहले हमारे गाँव में महेश, सुरेन्द्र सत्यनारायण, अशोक, हेमन्त, गोरू आदि सभी कंचियाँ व ताश खेलते थे। तो मैंने यह पहले करके बताया तो उनको मज़ा आया। फिर मैंने डिब्बे में पेटी रखी तो सत्यनारायण ने बता दिया। और बाकी बता नहीं पाए। तो सभी देखकर हँसने लगे। फिर और खेला तो तो फिर महेश ने बता दिया। इस तरह हमने सभी खेल छोड़कर 'बूझो डिब्बे में क्या है?' खेल खेलना शुरू कर दिया।

● महेन्द्र प्रजापति, दसवीं, मकरेड़ा, राजस्थान

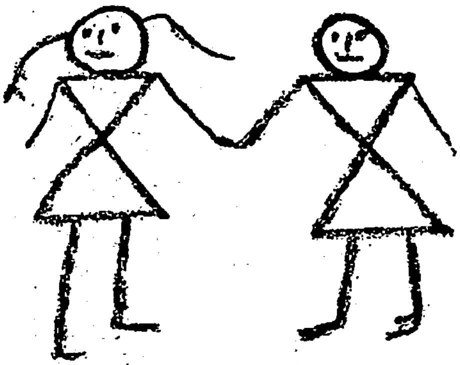
मेरा नाम स्वीटी छिंपा है। मैं कक्षा आठवी की छात्रा हूँ। मैं राजकीय सीनियर उच्च माध्यमिक विद्यालय में पढ़ती हूँ। मैं चकमक पढ़ना बहुत पसन्द करती हूँ। मुझे बहुत खुशी हुई जब मेरे नाम की एक चकमक आई। फिर एक–एक करके मेरे पास 6 चकमकें आ गईं। मैंने एक कहानी और एक कमल के फूल का चित्र भेजा था, वह नहीं आया। आप ये ना समझ लेना वो कहानी मैंने नकल की है। मैंने वो कहानी अपने आप सोच समझकर बनाई है क्या आपको वो पसन्द नहीं आई!

● स्वीटी छिंपा, छतरगढ़, बीकानेर, राजस्थान

हमारे यहाँ के शिक्षकों ने अपने मोहल्ले में बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों के बारे में लिखा था। खेल-गीत में उन खेलों को छपा हुआ देखकर वे बहुत खुश हुए। एक सुझाव। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि माथापच्ची के हल भी उसी अंक में दिए जाएँ? बच्चों को एक महीने तक इंतजार करना अच्छा नहीं लगता।

● रूथ रस्तोगी, लखनऊ, उ.प्र.

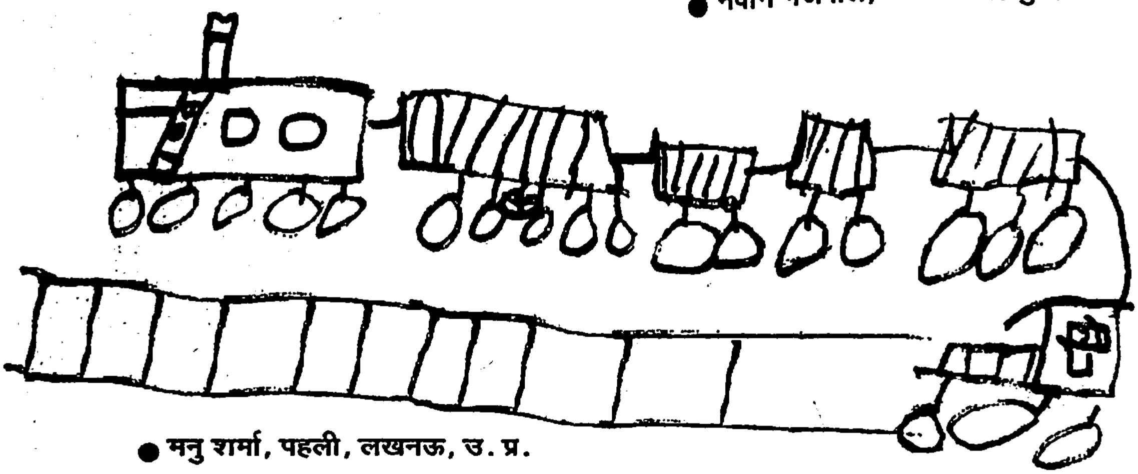
चित्रों का पन्ना . . .



● दीपक भोन्डे, धार, म. प्र.



● नवीन गजपाल, कसारीडिह, दुर्ग, म. प्र.



● मनु शर्मा, पहली, लखनऊ, उ. प्र.

यहाँ से काट लें

चकमक के सदस्य बनें आप : उपहार पाएँ दोस्त

आप चकमक का सदस्यता शुल्क भेज रहे हैं। अपने किसी ऐसे परिचित/दोस्त/परिवारजन का पता यहाँ लिखें जिसे आप चकमक से परिचित कराना चाहते हों। हम उन्हें चकमक का एक अंक उपहार में भेजेंगे।

नाम ....

मोहल्ला ....

डाकघर ....

ज़िला ....

पिन | | | | | | |

संगीत की परिभाषा

देखो, हवा से झूमते पेड़ों में भी संगीत है,
पक्षियों के चहचहाने में छिपा एक गीत है,
राग जो गाते हैं झरने, लगते सबको पुनीत हैं,
गा रही है कोई सरगम, वायु इतनी शीत है,
संगीत ऐसी वस्तु है जो सबके मन का मीत है।

टप-टप गिरती पानी की बूँदों में, बसा एक ताल है,
बुनती है सागर की लहरें, सरगम का एक जाल है,
बादलों की गर्जना में भी स्वरों की चाल है,
रातों में कहते जुगनुओं का ऐसा ही कुछ हाल है,
संगीत ऐसी वस्तु है जिसका जहाँ विशाल है।

● **अर्पित गर्ग, इन्दौर, म. प्र.**



● **ईशा पुंगालिया, पाँचवीं, पुणे, महाराष्ट्र**

रेक्स डी. रोज़ारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल ऑफसेट प्रिन्टर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई–1/25, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना

चकमक पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्रमांक म.प्र./261/भोपाल/2000



● अनिता फिलोमिना, पाँचवीं, भोपाल, म. प्र.